Annexure II

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार-1)

हिन्दू कोड बिल हिन्दुत्व का रक्षक है

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

[वेदों क सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति उन थोड़े से व्यक्तियों में हैं जिनके जीवन का अधिकांश समय वेदों एवं आर्यों के प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों के अनुशीलन और अनुसन्धान में बीता है। पिछले दिनों उनकी एक लेखमाला दिल्ली के सुप्रसिद्ध हिन्दी दैनिक "वीर अर्जुन" में प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होंने प्राचीन स्मृतियों, वेदों तथा शास्त्रों के प्रमाण एवं उद्धरण देकर हिन्दू बिल के विविध विधानों का सारर्भित विवेचन किया है । विचारशील पाठकों के लिए "वीर अर्जुन" की स्वीकृति से यह लेख माला यहां पुनः प्रकाशित की जा रही है]

भारत सरकार के विधान-सचिव माननीय डा. भीमराव अम्बेडकर द्वारा भारतीय राष्ट्र संसद् व पार्लियामेण्ट में प्रस्तुत 'हिन्दू कोड बिल' के विरुद्ध घोर आन्दोलन किया जा रहा है । देहली में भी एक हिन्दू कोड विरोधी सम्मेलन हो चुका है जिसमे मुख्य नारा यह लगाया गया कि इससे धर्म तथा संस्कृति का सर्वनाश हो जायेगा। मैं प्रारम्भ में ही इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं हिन्दू कोड बिल का सर्वांश में समर्थक नहीं हूँ। इसमें अनेक संशोधनों की आवश्यकता है, ऐसा भी मेरा विचार हैं किन्तु मुझे यह देख कर दुख होता है कि इस बिल के सम्बन्ध में असत्य प्रचार बहुत अधिक किया जा रहा है । प्रायः इसके विरोधी ऐसे हैं जिन्होंने ध्यानपूर्वक बिल की धाराओं को पढ़ने का कभी कष्ट नहीं उठाया और वे 'हिन्दूधर्म और संस्कृति संकट में' इस नारे को लगा कर सर्वसाधारण जनता को उत्तेजित करने का अनुचित प्रयत्न कर रहे हैं । मैं स्वयं वेदादि सत्यशास्त्रों में दृढ़ विश्वास रखने वाला हूँ और इसलिए शास्त्रीय दृष्टि से भी इस बिल में प्रस्तुत प्रस्तावों का मैंने अनुशीलन किया है जिसका परिणाम मैं जनता के सन्मुख रखने का प्रयत्न करूंगा। किंतु मैं इस प्रथम लेख में यह दिखाना चाहता हूँ कि इस 'हिन्दू कोड बिल' के निर्माता या समर्थक 'हिन्दू धर्म' और संस्कृति का नाश करना चाहते हैं, उन्हें 'हिन्दू धर्म' से कोई प्रेम नहीं इत्यादि जो अप्रचार किया जा रहा है वह कितना असत्य है ?

इस बिल की धारा 78 में लिखा है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति इस धारा के विधानों के अधीन किसी नाबालिग का वली (संरक्षक) होने का अधिकार नहीं रखेगा :

(अ) 'यदि वह हिन्दू धर्म को त्याग चुका है' इत्यादि ।

धारा 81 में 'स्वाभाविक बली का अधिकार सत्ता का खण्डन' शीर्षक के नीचे लिखा है-जहां पर कि किसी नाबालिग हिंदू का स्वाभाविक वली ऐसे नाबालिग की संरक्षकता किसी दूसरे व्यक्ति को दे देता है, वह निम्न अंकितों को छोड़ कर खण्डन योग्य होगा:

(क) जहां पर कि उसको खण्डित करने की स्वीकृति देना नाबालिग के हित लाभ के लिए नहीं है अथवा (ख) जहां पर कि स्वाभाविक वली हिंदू धर्म को त्याग चुका है।

धारा 83 में लिखा है- "किसी नाबालिग हिंदू के वली का कर्त्तव्य होगा कि वह ऐसे नाबालिग का हिंदू के रूप में पालन-पोषण करे"।

गोद लेने के विषय में विधवा के अधिकार की समाप्ति विषयक धारा 61 में लिखा है कि एक विधवा का गोद लेने का अधिकार समाप्त हो जाता है:

(क) जब कि वह पुनर्विवाह कर लेती है।

(ख) जब हिंदू धर्म को त्याग देती है। गोद देने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति इस शीर्षक की धारा 62, उपधारा (3) में लिखा है कि माता बच्चे को गोद दे सकेगी:

(क) यदि बच्चे का पिता मर चुका है।

(ख) यदि वह पिता हिन्दू धर्म को त्याग चुका है इत्यादि। प्रवर समिति (सेलेक्ट कमेटी) की रिपोर्ट में ऊपर उद्धत धारा 78 के विषय में सदस्यों ने लिखा है कि 'हम समझते हैं कि जो व्यक्ति हिन्दू धर्म को या इस संसार को त्याग चुका है उसे किसी नाबालिग हिन्दू का स्वाभाविक वली (संरक्षक) बनने का अधिकार न होना चाहिए।'

पत्नी का भरण-पोषण, इस शीर्षक की धारा 126 में लिखा है कि निम्नलिखित दशाओं में जीविका प्राप्त करने के अपने अधिकार से वंचित हुए बगैर भी उससे अलग रहने का एक हिंदू पत्नी अधिकार रख सकती है यदि (ए) वह धर्म परिवर्तन द्वारा अन्य धर्मावलम्बी बन कर अहिंदू बन चुका है इत्यादि। उपधारा (3) में लिखा है कि यदि कोई हिंदू पत्नी अपतिव्रता है अथवा धर्म परिवर्तन द्वारा अन्य धर्मावलम्बी बन कर अहिंदू बन चुकी है, तो उस हालत में उसे अलग रहने तथा भरण-पोषण हासिल करने का अधिकार नहीं होगा।

धारा 120 का धर्मपरिवर्तन करने वाला दाय ग्रहण की योग्यता नहीं रखता, इस शीर्षक के नीचे लिखा है कि जहां इस कोड के प्रारम्भ होने से पहिले या बाद कोई हिंदू धर्म परिवर्तन करके अन्य धर्मावलम्बी बन जाने के कारण हिंदू न रह गया हो या अहिन्दू बन चुका हो तो इस प्रकार के धर्म परिवर्तन के पश्चात् उस पुरुष या उस स्त्री से जो बच्चे उत्पन्न होंगे, तथा उनकी सन्तान अपने किसी हिन्दू सम्बन्धी की सम्पत्ति को

प्राप्त करने का अधिकार न रखेगी जब तक कि ऐसे बच्चे या सन्तान उत्तराधिकार शुरू होने के समय हिन्दू नहीं है।

ऐसे अन्य उद्धरण भी अनेक दिये जा सकते हैं जिनसे स्पष्ट है कि हिन्दू कोड बिल के निर्माताओं ने हिन्दुत्व की रक्षा का विशेष ध्यान रखा है तथा उन्हें हिन्दू धर्म से प्रेम है, यद्यपि उसमें सुधार की आवश्यकता को वे अवश्य अनुभव करते है जिसका उद्देश्य भी वस्तुतः हिन्दू धर्म और जाति का उद्धार ही है।

इस विषय में माननीय डा. अम्बेडकर आदि से हुई बातचीत के आधार पर मैं निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि वे हिंदू जाति को एकसूत्र में लाने और उसके संगठन को दृढ़ करने के लिए ही इस हिन्दू कोड बिल को प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें हिन्दुओं के अन्दर, धारा 2 में दी परिभाषा के अनुसार न केवल वे व्यक्ति आते हैं जो हिन्दू ध र्म के किसी भी स्वरूप या संप्रदाय को मानते हैं, किन्तु बौद्ध, जैन या सिक्ख धर्म के अनुयायी अथवा हिन्दू धर्म ग्रहण करने वाले व्यक्ति भी आते हैं । आदिवासी तथा अन्य भी इस परिभाषा में हिन्दुओं के अन्दर ही माने गये है।

विशाल दृष्टि से देखने पर निष्पक्षपात विचारकों को ऐसे एक सर्वसामान्य कोड का महत्व ज्ञात हो सकता है। भिन्न-भिन्न स्थानों और जातियों के रीति-रिवाजों ने विशाल हिन्दू को कैसे छिन्न-भिन्न कर रखा है यह बताने की अवश्यकता नहीं। इसलिये मैं चाहता हूँ कि झूठे नारे लगाने और इस बिल का पूर्ण विरोध करने की भावना को छोड़ कर लोग इस बिल की धाराओं का निष्पन्न होकर अध्ययन करें और तब ऐसे निर्देश अथवा संशोधन प्रस्तुत करें जिससे यह अधिक उपयोगी और लाभकारक बन सके। डा. अम्बेडकर तथा अन्य सदस्य ऐसे क्रियात्मक निर्देशों का स्वागत करने को उद्यत हैं।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार-2)

विवाहसंबंधी धाराएं

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रथम लेख में मैंने पाठकों से निवेदन किया था कि 'हिन्दू कोड बिल का उद्देश्य हिन्दू धर्म, समाज और संस्कृति का सर्वनाश करना है' इत्यादि कल्पित, असत्य नारों पर विश्वास न करके उन्हें निष्पक्षता होकर गम्भीर भाव से हिन्दू कोड बिल की भिन्न 2 धाराओं पर विचार करना चाहिये। इस लेख में मैं विवाह विषयक धाराओं पर कुछ प्रकाश डालना चाहता हूं।

विवाह को शास्त्रीय और सिविल इन दोनों भागों में विभक्त करते हुए शास्त्रीय विवाह की शर्तें धारा 7 में निम्नलिखित मानी गई हैं:-

धारा 7-यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाती हैं तो किन्हीं भी दो हिन्दुओं में शास्त्रीय रीति के अनुसार विवाह सम्पन्न हो सकेगा:-

(1) यदि दोनों पक्षों में विवाह के समय पर कोई पक्ष भी पति अथवा पत्नी नहीं रखता।

(2) यदि दोनों पक्षों में विवाह के समय कोई जड़ बुद्धि या पागल नहीं है।

(3) यदि विवाह के समय वर अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुका है और वधू 14 वर्ष आयु पूरी कर चुकी है।

(4) यदि दोनों पक्ष परस्पर निषेधात्मक सम्भन्ध की कोटियों के अन्तर्गत नहीं आते।

(5) यदि दोनों पक्ष आपस में परस्पर सपिण्ड नहीं हैं और यदि पारस्परिक आचार और परम्परा के अन्तर्गत दोनों पक्षों में ऐसा संस्कार जायज (वैध) मानने की प्रथा न हो।

(6) जहां वर या वधू 16 वर्ष की आयु पूरी नहीं कर चुकी हैं उसके संरक्षक को स्वीकृति प्राप्त की जा चुकी है।

सपिण्ड सम्बन्ध की परिभाषा और व्याख्या करते हुए धारा 5 में कहा गया है कि,-

(1)(क) सपिण्ड सम्बन्ध का अर्थ अपने मातृकुल की तीन पीढ़ी तक और पितृकुल की 5 पीढ़ी तक होगा।

(ख) दो व्यक्ति उसी अवस्था में परस्पर सपिण्ड कहे जाते हैं यदि वे, एक दूसरे के वंश-परम्परा से सपिण्ड सम्बन्ध की सीमा के भीतर समर्वशज हैं अथवा यदि वे दोनों सपिण्ड सम्बन्ध की सीमा के भीतर सम्मिलित वंश परम्परागत आपस में एक दूसरे के साथ समान वंशज के रूप में हैं।

(ग) निषिद्ध सम्बन्ध का क्रम ... दो व्यक्तियों का उस अवस्था में निषिद्ध सम्बन्ध कहा जाता है यदि दोनों में से एक वंशानुक्रम से दूसरे का पुरखा हो, अथवा वंशानुक्रम से पुरखे या संतति की पत्नी या पति रहा हो, अथवा वे दोनों भाई-बहन, चाचा-भतीजी और चाची-भतिजा अथवा भाईयों व बहनों की सन्तति हों।

स्पष्टीकरण:- वाक्य खण्ड 1 और 2 में ये समबन्ध भी शामिल हैं। (अ) ऐसा सम्बन्ध जो कि अर्धरक्तयुक्त सहोदर रक्तयुक्त है।

(2) धर्मज तथा अधर्मज सन्तति सम्बन्ध।

(3) दत्तक अथवा रक्त सम्बन्ध।

उक्त वाक्य-खण्डों में कथित सभी सम्बन्धद्योतक शब्दों का इसी प्रकार अर्थ समझा जायेगा। पाठक देखेंगे कि शास्त्रीय विवाह के लिए जो शर्तें उपर वर्णित की गई हैं वे अधिकतर वही हैं जिन्हें धार्मिक दृष्टि से अब भी प्राय: मान्य समझा जाता है। अन्तर थोड़ा सा हैं। "पंचमात् सप्तमादूर्ध्वमातृत: पितृतस्तथा"। इत्यादि स्मृति वचनों में मातृकुल और पितृकुल की क्रमश: 5 और 7 पीढ़ियों को सपिण्ड मानकर उन्हें छोड़ने का विधान है यद्यपि स्मृति चन्द्रिका, चतुर्विशति मत संग्रहादि में 3 और 5 तक ही सपिंडता मानी गई हैं कई पौराणिक ग्रन्थों में तो सपिंडता का और भी अधिक संकोच करते हुए मामा की लड़की इत्यादि से भी विवाह को उचित माना गया है और दाक्षिणात्यों में कई स्थानों पर वैसी ही प्रथा है। इसलिए कोड बिल में मध्यमार्ग को ग्रहण किया गया है। यदि 3 और 5 पीढ़ियों के स्थान पर मातृकुल और पितृकुल की क्रमश: 5 और 7 पीढ़ियों को छोड़ा जाय तो अधिक शास्त्रीय होगा इसमें सन्देह नहीं। किंतु यह कहना कि इस कोड बिल के अनुसार भाई बहिन का विवाह भी वैध समझा जायेगा, जैसे कि कोड विरोधी लोगों ने कुछ पत्रों और पोस्टर आदि में प्रकाशित किया था सर्वथा असत्य है, यह तो स्पष्ट ही है। मेरे विचारानुसार शास्त्रीय विवाह के नियमों में यदि दोनों पक्ष परस्पर सपिण्ड नहीं हैं। इसके बाद धारा 7 उपधारा 5 में यह जो अपवाद रखा गया है कि यदि पारस्परिक आचार-परम्परा के अन्तर्गत दोनों पक्षों में ऐसा संस्कार वैध या जायज मानने की प्रथा न हो ये शब्द भी उड़ा देने चाहिए जिससे एकरूपता की रक्षा के अतिरिक्त सपिण्डों अथवा निकट सम्बन्धियों में विवाह के निषेध विषयक शास्त्रोक्त वैज्ञानिक आज्ञा का पालन हो सके।

अनेक हिंदू कोड बिल विरोधी कितने असत्य और छल का आश्रय ले रहे हैं इसका एक और अति स्पष्ट उदाहरण दिए बिना मैं नहीं रह सकता। ऊपर शास्त्रीय विवाह की शर्तों के विषय में मैंने जिस धारा संख्या 7 को उद्धत किया है उसमें चौथी शर्त मूल अंग्रेजी में इन शब्दों में है (4) The parties are not within the degrees of prohibited relationship हिन्दू कोड विरोधी समिति कलकत्ता ने हिन्दू कोड बिल का जो कुछ अनुवाद हिंदी में छपाया उसमें पृ. 5 पर इसका अनुवाद इस प्रकार दिया:-

दोनों ही पक्ष (वर-वधू) निषिद्ध सम्बन्ध के क्रम मे आते हों। मूल का अर्थ 'निषिद्ध सम्बन्ध के क्रम में न आते हों' यह है। किन्तु अनुवादक महाशय जनता में उसके विरुद्ध भावना भरने के लिए उसके "न" को खाकर अनुवाद कर बैठे हैं कि शास्त्रीय विवाह वह होगा जहां दोनों पक्ष निषिद्ध सम्बन्ध के क्रम में आते हैं। यह मानना बड़ा कठिन है कि यह छापे की भूल है। मुझे तो इसमें स्पष्ट ही शरारत प्रतीत होती है। इस अनुवाद के अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है 'प्रत्येक हिंदू चेत जाए। हिंदू कोड बिल हिंदू समाज और

संस्कृति का तख्ता ही उलट देने का भयानक कुचक्र है।' मैं इस बात का निर्णय पाठकों पर छोड़ना चाहता हूं कि क्या ऐसे असत्य से हिंदू समाज और संस्कृति की रक्षा हो सकती है?

बहुविवाह का पति-पत्नी दोनों के लिए निषेध करके वस्तुतः **"जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्" "इहेमाविन्द्र संनुद चक्रवाकेव दम्पती"** इत्यादि वेद मंत्रों में स्पष्टतया निर्दिष्ट एक विवाह के आदर्श की ही समर्थन किया गया है। **"संमतपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः"** इत्यादि वेद-मंत्रों में सपत्नीत्व को अत्यन्त दुःखदायक बताया गया है। दुर्भाग्यवश कुछ शिक्षित युवक-युवतियों में भी यह बहुविवाह की प्रवृत्ति बढ़ रही थी और उसके भयंकर परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे थे अतः इस प्रकार का प्रतिबन्ध आवश्यक ही था। वर्तमान हिंदू कानून के अनुसार पुरुष जितने चाहे विवाह कर सकता था जिसके कई उदाहरण देहली के सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित समझे जाने वाले व्यक्तियों में भी विद्यमान है। एक पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह करना प्रथम पत्नी को विष देने के समान है यह लिखने की आवश्यकता नहीं।

न्यूनतम आयु के विषय में यहां वर-वधू के लिए 18 और 14 को नियत किया गया है जिसे हम सर्वथा अपर्याप्त समझते हैं। हमारे विचार में तो 24 और 16 से कम विवाहार्थी वर-वधू की आयु न होनी चाहिए। **'अष्टवर्षा भवेद् गोरी'** जैसे वेद विरुद्ध श्लोकों को मानने वाले इस अंश का भी विरोध करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

विवाह विषयक इन धाराओं में जातिमूलक भेदभाव को जो स्वीकार नहीं किया गया इस से कई कट्टरपन्थी भले ही अप्रसन्न हों किन्तु जो विचारशील लोग हैं जानते हैं कि इस कृत्रिम, जन्ममूलक जातिभेद ने किस प्रकार हिन्दू समाज को 8 हजार के लगभग जातियों-उपजातियों में विभक्त कर के उस की एकता, संगठन और परस्पर प्रेम को नष्ट कर रक्खा है तथा किस प्रकार यह जाति-भेद **'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुःसौभगाय।'** (ऋ. 5/56/5) **'शूद्रो ब्राह्मणतामेति, ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्** (मनु 10/46), **न जात्या ब्राह्मणश्चात्र, क्षत्रियो वैश्य एव न । न शूद्रो न च वै म्लेंच्छो भेदिता गुणकर्मभिः॥'** शुक्रनीति, **'न कुलेन न जात्या वा, क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत्।'** (महाभारत वनपर्व) इत्यादि शास्त्रीय वचनों के सर्वथा विरुद्ध है जहां वर्णव्यवस्था को केवल गुण कर्मानुसार बताया गया है तथा जन्म की दृष्टि से सब मनुष्यों की समानता का प्रतिपादन है उन्हें इससे जरा भी दुःख न होगा । वर्ण-व्यवस्था को गुणकर्मानुसार मान लेने पर (जिस सिद्धांत की सनातनता की घोषणा गत वर्ष काशी आदि स्थानों की, विद्वन्मंडली भी कर चुकी है) विवाह में जाति का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। वस्तुतः अन्तरजातीय विवाहों के समर्थन में अनेक शास्त्रीय वचनों और ऐतिहासिक उदाहरणों को प्रस्तुत किया जा सकता है किंतु विस्तारभय से मैं यहां ऐसा करना अनावश्यक समझता हूं। जो भाई जन्म-मूलक जातिभेद को मानते हैं, इस कोड में उन के लिए कोई प्रतिषेध नहीं है। उनकी अपने विश्वासानुसार विवाहादि करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है।

इस प्रस्तुत कोड में सगोत्र विवाह का प्रतिपादन किया गया है यह कह कर हिन्दू जनता को इसके विरुद्ध प्रायः भड़काया जाता है, किंतु इस में कोई ऐसी धारा नहीं है जहां सगोत्र विवाह का प्रतिपादन या समर्थन हो। केवल एक धारा स. 27 है जिसका शीर्षक "पहले विवाहों के विषय में छूट" यह है, जिस में कहा गया है कि "ऐसा विवाह जो कि इस कोड के आरम्भ होने से पहले दो हिन्दू में सम्पूर्ण हो चुका है और जो कि किसी दूसरे तौर पर जायज वा वैध है वह नाजायज नहीं होगा और कभी भी केवल इस हेतु तथा हकीकत पर नाजायज या अवैध न हों विचारा जायेगा कि दोनों पक्ष समान गोत्र अथवा समान प्रवर रखते थे अथवा भिन्न जाति अथवा समान जाति में से विभक्त उपजाति से सम्बन्ध रखते थे।

यह धारा इस कोड के प्रारम्भ से पूर्व सम्पन्न विवाहों के विषय में है। कहां तो एक ओर हिन्दू कोड बिल के विरोधी सनातन धर्म के नाम पर विवाह सम्बन्ध की अच्छेद्यता की दुहाई देते हैं और कहां वे ऐसी धारा का विरोध व खण्डन करते हैं जिस में केवल सगोत्रता वा जाति-भिन्नता के आधार पर पूर्व सम्पन्न विवाहों को अवैध मानने से इन्कार किया गया है यह परस्पर-विरुद्धता आश्चर्यजनक है।

हम स्वभावतः यह चाहते हैं कि सब लोग शास्त्रीय विवाह ही करें और इसी के लिए हम सब को उसका महत्त्व बुद्धिपूर्वक समझा कर प्रेरित करना चाहिए किंतु जो ऐसा किसी कारणवश नही करना चाहते उनके लिए सिविल विवाह की पूर्वोद्धृत शर्तों के अनुसार ही व्यवस्था की गई है केवल इतनी शर्त उसमें और जोड़ी गई है कि 'विवाह के दोनों पक्षों में यदि वर अथवा वधू आयु के 21 वर्ष पूरे नहीं कर चुके तो ऐसी स्थिति में इस विवाह की स्वीकृति प्राप्त कर ली गई हो' सिविल विवाह का भी यह अर्थ इस कोड के अनुसार नहीं है कि उसमें कोई धार्मिक विधि व क्रिया न हो। धारा 18 खंड 2 में स्पष्ट लिखा है कि विवाह किसी भी रीति अनुसार सम्पूर्ण हो सकेगा किंतु शर्त यह है कि यह विवाह तब तक पूर्ण और पक्षों को कानूनी बन्धन में जकड़ने वाला नहीं होगा जब तक कि प्रत्येक पक्ष रजिस्ट्रार और 3 साक्षियों के सम्मुख ऐसा नहीं कहता कि मैं मुझको अपनी कानूनसंगत पत्नी (अथवा पति) बनने के लिए ग्रहण करता (या करती) हूँ।

वस्तुतः विवाह मन्त्रों में यह भाव स्पष्टतया समाविष्ट है। एक मुख्य बात यह है कि अब सिविल विवाह के लिए पूर्ववत् यह कहने की आवश्यकता न होगी कि मैं हिन्दू धर्म या अन्य किसी स्वीकृत धर्म को मानने वाला नहीं।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार-3)

विवाह-विच्छेद की परिस्थितियां

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

इस तृतीय लेख में मैं विवाह संबन्ध विच्छेदादि विषयक धाराओं पर कुछ विचार करना चाहता हूँ जो मुख्यतया निम्न हैं–

धारा 30––कोई ऐसा विवाह, चाहे वह इस कोड में आरम्भ होने से पहले अथवा बाद में सम्पूर्ण हो चुका है, निम्नांकित आधारों में से किसी एक के कारण खत्म हो जायेगा।

(1) यदि ऐसे विवाह के समय पर और तब से लेकर लगातार इस सम्बन्धी अदालती कार्यवाही के आरम्भ तक विवाह के दोनों पक्षों में से कोई एक नपुंसक था।

(2) यदि पति किसी स्त्री को रखेली के रूप में रख रहा है अथवा पत्नी किसी पर पुरुष की रखेली बन कर रह रही है या वेश्या का जीवन व्यतीत कर रही है।

(3) यदि विवाह के दोनों पक्षों में से कोई पक्ष दूसरा धर्म ग्रहण कर लेता है और हिन्दू धर्म को त्याग देता है।

(4) यदि विवाह के दोनों पक्षों में एक पक्ष असाध्यरूप में उन्मत्त या पागल है और ऐसे प्रार्थनापत्र के देने के पहले निरन्तर पांच वर्ष के लिए उसका इलाज किया जा चुका है।

(5) यदि दोनों पक्षों में कोई एक बड़े भयानक और असाध्य प्रकार के कुष्ठ से पीड़ा उठा रहा है।

पूर्व इसके कि मैं इस अत्यन्त विवादास्पद और गंभीर विषय पर वैयक्तिक रूप से अपने विचार जनता के सामने रखूं, मैं यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूं कि वैदिक आदर्श के अनुसार पति पत्नी सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होना चाहिए। पाणिग्रहण से समय जो मन्त्र **'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिमह्य त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।** (ऋ. 10, 85, 36) **'मभेयमस्तु पोष्या मह्य त्वादाद् वहस्पतिः । मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् ॥** (अथर्व 14, 1, 52)

इत्यादि मन्त्र पढ़े जाते हैं उनमें वर वधू को संबोधित करते हुये स्पष्ट कहता है कि मैं तुम्हारे हाथ को सौभाग्य की वृद्धि के लिए ग्रहण कर रहा हूँ, तुम मेरे साथ वृद्धावस्था पर्यन्त सुखपूर्वक निवास करो। तुम मेरी पोष्या या भार्या हो। परमात्मा ने तुम्हें मुझे दिया है। मुझ पति के साथ तुम 100 वर्ष पर्यन्त सुख शान्ति पूर्वक रहो।

(1) **''आ नः प्रजां जनयतु प्रजा पतिराजसाय समनक्त्वर्यमां। अदुर्भमंलीः पतिलोकमाविश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥"** (ऋ. 10/85/43)

(2) **"इहैवस्तं माविवौष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।**

क्रीड़न्तो पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥" (ऋ. 10/85/42)

इत्यादि विवाह सूक्त के अन्य मन्त्रों में भी यह स्पष्टतया कहा गया है कि परमात्मा हमें वृद्धावस्था पर्यन्त सदा मिलाये रक्खे। हे पति-पत्नि! तुम दोनों यहां रहो। (माविवौष्टम्)

तुम्हारा एक दूसरे से कभी वियोग व विरोध न हो अथवा तुम एक दूसरे का परित्याग न करो। घर में प्रसन्न होकर सम्पूर्ण आयु को आनन्दपूर्वक बिताओ, इत्यादि।

वैदिक आदर्श के अनुसार निम्न नियम आवश्यक हैं—

(1) कम से कम 24 वर्ष तक पुरुष और 16 वर्ष तक कन्या पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें तभी एक दूसरे की प्रसन्नता से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें।

(2) विवाह युवावस्था में स्वयंवर रूप में होना चाहिये, जब परस्पर दृढ़ कामना हो तभी विवाह होना चाहिए अन्यथा नहीं। यह भाव **'एयमगन् पति कामा जनिकामोऽहमागमम् ।'** (अथर्व वेद) **'वधूरियं पति मिच्छन्त्येति॥** (ऋ. 5/37/3) **'भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशा स्वयं सा मित्र वनुते जने चित् ॥** (ऋ. 10/27/12)

इत्यादि वेद मन्त्रों में स्पष्टतया प्रतिपादित है। दोनों अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व को जानते हुए परस्पर प्रसन्नतापूर्वक विवाह करते हैं।

(3) पुरुष को पत्नीव्रत धर्म का और स्त्री को पतिव्रत धर्म का भली भांति सदा पालन करना चाहिए। परस्पर पूर्ण विश्वास रखते हुए उन्हें धर्म, अर्थ, काम में पूर्ण सहयोग देना चाहिये।

यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि इन वैदिक आदर्शों का पालन करते हुए विवाह सम्बन्ध विच्छेदादि का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। किन्तु दुर्भाग्यवश इन आदर्शों और नियमों से जनता बहुत दूर जा चुकी है। न ब्रह्मचर्य का क्रम रहा, न वेदाध्ययनादि का और न अन्य वैदिक नियमों का पालन किया जाता है जिस से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का विकास हो सके। ऐसी दशा में प्रश्न उपस्थित होता है कि जो अवस्थाए धारा 30 में वर्णित हैं उन में क्या किया जाए।

मध्यकाल में जो भी स्मृतियां लिखी गईं तथा अन्य ग्रन्थ बनाऐ गऐ उन में वैदिक आदेशों के विरुद्ध बहुत सी बातें पाई जाती हैं जिन को प्रामाणिक मान कर बाल्य विवाह प्रचलित हो गया, स्त्रियों से वेदाध्ययन और यज्ञ का अधिकार छीन लिया गया, विवाह केवल माता पिता या अधिकतर अशिक्षित पुरोहित या नाई आदि की इच्छा से होने लगे जिनमें गुणकर्म स्वभाव के मेल का विचार न करके केवल जाति उपजाति की समानता का ध्यान रक्खा गया। ऐसी अवस्था में जो शोचनीय परिस्थिति उत्पन्न हो गई उसको सुधारने की आवश्यकता से कोई विचारशील व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता। बाल्य विवाह का ही कुपरिणाम बाल्य मरण, निर्वीर्यता व नपुंसकता आदि के रूप में दृष्टिगोचर होता है। पति-पत्नी के कलह तथा पतियों द्वारा विवाहित पत्नियों के त्याग, उन से क्रूरतापूर्ण व्यवहार अथवा पुनर्विवाह आदि के सैकड़ों नहीं हजारों उदाहरण किसी भी नगर में सुगमता से पाये जा सकते हैं। ऐसी अवस्था में क्या वैदिक आदर्शों अथवा सनातन धर्म की दुहाई देने से काम नहीं चल सकता है? इस प्रश्न पर समाज-हितैषियों को गम्भीरता से विचार करना चाहिए। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस प्रतिकार का अवलम्बन किया जाए वह कहीं वर्तमान अवस्था को और भी बिगाड़ने वाला न हो।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार-4)

विवाह-विच्छेद और स्मृति आदि ग्रंथ

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रायः कहा जाता है कि विवाह सम्बन्ध विच्छेद (जिसे साधारणतया तलाक के नाम से कहते हैं) हिन्दू धर्म तथा हिन्दू समाज की भावना के सर्वथा विरुद्ध तथा उसके लिए सर्वथा नवीन प्रथा है जिसको इस बिल द्वारा हिन्दू समाज पर लादा जा रहा है। यही बात भारतीय राष्ट्र भारतीय राष्ट्र संसद (पार्लियामेंट) में पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रादि अनेक सज्जनों ने बार बार कही थी किन्तु स्मृतिग्रन्थों तथा मध्यकालीन अन्य साहित्य का निष्पक्षपात अनुशीलन करने पर इसकी असत्यता स्पष्ट ज्ञात है। जैसे कि इस लेख के प्रारम्भिक भाग में मैं दिखा चुका हूँ वैदिक आदर्शों का अनुकरण करते और विवाह विषयक वैदिक नियमों का पालन करते हुए तो विवाह सम्बन्ध विच्छेद का प्रश्न ही नहीं उठ सकता किन्तु उन आदर्शों से दूर होने और वेद विरुद्ध प्रथाओं के अनुसरण के कारण जो शोचनीय अवस्था उत्पन्न हो चुकी है हमें तो इस समय उसपर विचार करना है। निम्नलिखित स्मृत्यादि वचनों को इस सम्बन्ध में ध्यान में रखना चाहिए। सब से पूर्व मैं उस स्मृति वचन को उद्धृत करता हूं जो सुप्रसिद्ध है :

(1) **''नष्टे मृते प्रव्रजिते, क्लीबे च पतिते पतौ । पंचस्वापत्सु नारीणां, पतिरन्यो विधीयते॥''**

यह श्लोक पराशरस्मृति के अ. 4 का श्लोक 30 है। पराशरस्मृति के **'कलौ पाराशरः स्मृतः'** अथवा **'कलौ पराशरी स्मृतिः ॥'** इत्यादि के अनुसार इस कलियुग में हमारे पौराणिक भाई जो हिन्दू कोड बिल का विरोध कर रहे हैं सब से अधिक प्रामाणिक मानते हैं। इस श्लोक का अर्थ स्पष्ट है कि—

पति के नष्ट हो जाने (उनके गुम हो जाने अथवा उसके विषय में कोई समाचार ज्ञात न होने), मर जाने, संन्यासी हो जाने, नपुंसक होने अथवा पतित हो जाने पर—इन पांच आपत्तियों में स्त्रियों के लिए दूसरे पति का विधान किया जाता है।

हिन्दू धर्म का परित्याग करके मुसलमान व ईसाई हो जाना श्रद्धालु हिन्दुओं की दृष्टि में पतित हो जाना है! अतः धारा 30 में वर्णित अनेक बातों का इसे आधार कहा जा सकता है इसमें कोई सन्देह नहीं।

मुझे मालूम है कि पौराणिक भाष्यकार तथा भाई इस श्लोक के 'पतौ' का अर्थ विवाहित पति नहीं किन्तु उत्पत्स्यमानपति' या भावी पति करके इस श्लोक का सम्बन्ध विवाह संस्कार से पूर्व केवल वाग्दान की अवस्था में मानते हैं और व्याकरण की दृष्टि से तोड़ मरोड़ कर ऐसा अर्थ करने का दुःसाहस करते हैं। किन्तु **'पतिः अन्यो विधीयते'** इन शब्दों से जिनका अर्थ सिवाय इसके कोई हो ही नहीं सकता कि दूसरे पति का विधान किया जाता है उनके इस प्रयत्न की निस्सारता सिद्ध होती है। यहां 'पतौ' इसको आर्षप्रयोग मानना ही उचित है। इस पर भी यदि किसी को सन्देह हो तो नारदीय मनुसंहिता अध्याय 12 के श्लोक 99 को देखना चाहिए जो निम्न शब्दों में है :

''पत्यौ प्रव्रजिते नष्टे, क्लीबेऽथ पतिते मृते। पंचस्वापत्सु नारीणां, पतिरन्यो विधीयते॥''

(देखो नारदीय मनुसंहिता भवस्वामिभाष्यसंहिता साम्बशिवशास्त्रिणा सम्पादिता त्रिवेन्द्रम् सन् 1929 पृ. 144) यहां उसी ऊपर उद्धृत श्लोक को ही थोड़े से शब्दभेद से दिया गया है। मुख्य बात यह कि 'पत्यौ' शब्द का प्रयोग है जो लौकिक व्याकरण की दृष्टि से भी सर्वथा ठीक है। इसका अर्थ वही है जो ऊपर दिया जा चुका है। वृद्ध मनुस्मृति अ. 9 पृ. 111 में भी यह श्लोक पाया जाता है। अग्निपुराण अ. 154 में भी यही श्लोक पराशर स्मृति के पाठ के अनुसार विद्यमान है।

गौतम धर्म के सूत्र के मस्करिभाष्य में **अपतिरपत्यलिप्सुदेवरात्** 18/4 की व्याख्या में लिखा है।

अपतिः—अविद्यमान भर्तृका अयोग्यपतिर्वा तथा च बृहस्पतिः 'नष्टे मृते प्रव्रजिते, क्लीबे च पतितेपतौ। पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते' इति।

(देखो पं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी तर्कतीर्थ पूना द्वारा सम्पादित "धर्मकोष" व्यवहार कांड पृ. 1012) इससे ज्ञात होता है कि बृहस्पति स्मृति में भी यह श्लोक पाया जाता था जो स्मृति इस समय सम्पूर्णतया उपलब्ध नहीं होती।

इनके अतिरिक्त चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला कार्यालय बनारस से मनुस्मृति कुल्लूक भाष्य सहित संवत् 1992 में प्रकाशित हुई थी उसके अन्त में वर्तमान मनुस्मृति में अविद्यमान किन्तु अन्य ग्रन्थों में मनु के नाम से वर्णित श्लोकों को 'स्मृति चन्द्रिका' नामक सुप्रसिद्ध निबन्ध ग्रन्थ के आधार पर उद्धृत किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि पहले मनुस्मृति में भी यह श्लोक पाया जाता था। जो श्लोक इतनी स्मृति-पुराणादि में पाया जाता हो उसको ऐसे ही टाला नहीं जा सकता।

(2) मनुस्मृति अ. 9 श्लोक 72 भी इस सम्बन्ध में विचारणीय है जो निम्न लिखित है :

"विधिवत् प्रतिगृह्यापि, त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम्, व्याधिताम् विप्रदुष्टां वा, छद्मना चोपपादिताम्।" इसका अनुवाद साधुचरणप्रसाद जी ने वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई में मुद्रित धर्मशास्त्र संग्रह के पृष्ट 193 में इस प्रकार दिया है—

"वर को उचित है कि अलक्षण दोष वाली रोगिणी, मैथुन संसर्ग वाली अथवा ठगहारी करके दी हुई कन्या को विधिपूर्वक ग्रहण करके भी त्याग देवे।"

(3) नारदीय मनुसंहिता 12/32 में लिखा है :

"यस्तु दोषवती कन्याम्, अनाख्याय प्रयच्छति। दोषे तु सति नागः स्यात्, अन्योन्यं त्यजतोस्तयोः॥" साधुचरणप्रसाद जी ने धर्मशास्त्र संग्रह पृ. 194 में इसका अनुवाद यों दिया है:—

"यदि कन्या के दोष को छिपाकर वर को कन्या दी जाए तो वर कन्या को त्याग देवे और वर के दोष को छिपाकर कन्या से विवाह किया जाए तो कन्या वर को त्याग देवे इस में कोई अपराधी न होगा।" (धर्मशास्त्रसंग्रह पृष्ठ 194)।

प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल में भी इस प्रकार धोखे से कराये गये विवाह को अवैध माना गया है जिस का आधार उपर्युक्त वचन प्रतीत होते हैं।

(4) मनुस्मृति अ. का निम्नलिखित श्लोक भी इस सम्बन्ध में विशेष विचारणीय है:

"प्रोषितो धर्मकार्यार्थं, प्रतिक्ष्योष्टौ नरः समाः । विद्यार्थं षड्शोऽर्थं वा, कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥

वन्धाष्टमेऽधिवेद्याब्देदशमे तु मृतप्रजा । एकादशे स्त्रीजननीं सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥"

(मनु अ. 9/76/81)

इस का अर्थ महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में इस प्रकार दिया है:

"पुरुष के लिए भी नियम है कि वन्धया हो तो आठवें (विवाह से 8 वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहे) सन्तान होकर मर जावे तो दशवें जब जब हो तब तब कन्या ही हो पुत्र न हो तो ग्यारहवें वर्ष तक और अप्रिय बोलने वाली हो तो सद्यः उस स्त्री को छोड़ के दूसरी स्त्री से नियोग कर के सन्तानोत्पत्ति कर लेवे। वैसे ही जो पुरुष अत्यन्त दुखदायक हो तो स्त्री को उचित है कि उस को छोड़ के दूसरे पुरुष से नियोग कर के सन्तानोत्पत्ति कर के उसी विवाहित पति के दायभागो सन्तान कर लेवे . . . इत्यादि सत्यार्थप्रकाश 27वीं वार पृ. 73

(5) मनुस्मृति 9/79 में लिखा है कि **उन्मत्तं पतितं क्लीवम् अबीजं पाप रोगिणम्। न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम्।**

भावार्थ यह है कि यदि स्त्री ऐसे पति से द्वेष करती है जो उन्मत्त (पागल) है, धर्म का त्याग करके पतित हो गया है, नपुंसक तथा कोढ़ आदि भयंकर रोग से ग्रस्त है तो उसको विशेष दोष या दण्ड नहीं दिया जा सकता।

प्रस्तुत हिंदू कोड बिल की धारा 30 में इसी प्रकार की शर्तें रखी गई हैं जैसे पाठक लेख के प्रारम्भ में उद्धृत वाक्यों में देख सकते हैं।

(6) कौटिल्य अर्थशास्त्र धर्मस्थीय अधिकरण 3 अध्याय 2 में चाणक्य ने लिखा है:–

"नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्विषी । प्राणाभिहन्ता पतितः, त्याज्यः क्लीवोऽथवापतिः॥"

"परस्परं द्वेषान्मोक्षः" धर्मस्थीय अ. 3/4/19

अर्थात् पति यदि नीच और पतित हो गया हो, परदेश चला गया हो (और उसके विषय में कुछ ज्ञात न हो तो नियत अवधि तक मनु के अनुसार जो अधिक से अधिक 8 वर्ष है प्रतीक्षा कर के) धार्मिक राजा से द्रोहादि भयंकर अपराधी, हत्यारा अथवा नपुंसक हो तो वह त्याज्य है।

परस्पर द्वेष से पति पत्नी का त्याग या सम्बन्ध विच्छेद हो सकता है।

(2) यम स्मृति, कात्यायनादि से इसी प्रकार अन्य भी अनेक वचन उद्घृत किये जा सकते हैं किंतु इस विषय पर विचार पहले ही लम्बा हो गया है अतः उन्हें उद्घृत करते

हुए मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि हमें अपनी सामाजिक व्यवस्था को ऐसा सुधारना चाहिये कि सम्बन्ध विच्छेदादि का विचार भी कभी विवाहित पति-पत्नी के मन में उत्पन्न न हों पत्नीव्रत और पातिव्रत धर्म का पालन जो हमारी प्राचीन संस्कृति के मुख्य तत्त्व हैं—यदि पति-पत्नी करें तो इस प्रकार के विधान सर्वथा अनावश्यक हो जाएं। सब समाज-हितषियों को मिल कर ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिये। अत्यन्त विशेष आपत्ति, आकस्मिक मरण, असमर्थतादि में प्राचीन नियोग पद्धति का आश्रय लिया जा सकता है, किन्तु वर्तमान परिस्थिति में यदि इसे व्यावहार्य न माना जाय तो अत्यन्त विकट और जटिल अवस्थाओं में जहां अन्य कोई चारा ही न हो, सम्बन्ध विच्छेद की अनुमति अन्तिम साधन के रूप में दी जा सकती है पर उसकी शर्तों को अत्यधिक कठोर बनाना चाहिए ताकि उसका दुरुपयोग न हो सके। पाश्चात्य देशों में तलाक को जो अत्यन्त सुलभ बना दिया गया है उसके कारण नैतिकता व सदाचार का अत्यन्त ह्रास हो रहा है जो अवस्था अत्यन्त निन्दनीय है अत: हमें उसका अनुकरण न करना चाहिए। अत: जो धारा 30 मैंने इस लेख के प्रारम्भ में उद्धृत की थी उसमें निम्न संशोधन मुझे अत्यावश्यक प्रतीत होते हैं:

(1) ऐसा नियम बना दिया जाय कि विवाह के 8 वर्ष बाद तक कोई सम्बन्ध विच्छेद के लिए प्रार्थनापत्र नहीं दे सकता और न किसी को ऐसी अनुमति उस अवधि तक दी जायेगी। विश्वस्त-सूत्र से ज्ञात हुआ है कि 5 वर्ष की अवधि को इस बिल के प्रस्तोता संशोधन के रूप में स्वयं स्वीकार करने को उद्यत हैं यदि उसे 8 वर्ष तक बढ़ा दिया जाय तो अधिक अच्छा हो। इस बीच में बहुत अधिक सम्भावना यही है कि पति-पत्नी एक दूसरे के स्वभावादि से परिचित होकर सम्बन्ध-विच्देदादि का विचार भी न करेंगे।

(2) नपुंसकता, पागलपन, कुष्ठ इत्यादि की चिकित्सा के लिए भी 8 वर्ष की अवधि देना उचित है। यदि भली-भांति चिकित्सा और सेवा-शुश्रूषा करने पर भी लाभ न हो और पति-पत्नी सम्बन्ध-विच्छेद पर ही उतारू हों तो इस 8 वर्ष की अवधि के पश्चात् उसकी अनुमति दी जा सकती है।

विवाह-विच्छेद विषयक धारा 30 के अतिरिक्त धारा 33 में 'अदालत अलहदगी' के विषय में कहा गया है कि:

"विवाह के दोनों पक्षों में से कोई भी व्यक्ति चाहे ऐसा विवाह इस कोड के आरम्भ काल से पहले अथवा पीछे सम्पूर्ण हो चुका है जिला अदालत को इस आधार पर अदालती अलहदगी की डिग्री प्राप्ति के लिये प्रार्थना कर सकता है कि दूसरा पक्ष—

(अ) प्रार्थी को एक ऐसे समय से छोड़ चुका है कि जिसकी अवधि 2 वर्ष से कम नहीं है।

(इ) ऐसे जुल्म या अत्याचार का दोषी हो चुका है कि जिस के फलस्वरूप प्रार्थी उक्त पक्ष के साथ रहने में भयभीत हो चुका है अथवा

(उ) असाध्य, सोजाक, आत्यंतिक व्याधि से पीड़ित हो रहा है जो कि प्रकट अवस्था में है तथा जो कि उसे प्रार्थी की ओर से नहीं लगी है तथा इतने समय से वह इस व्याधि से पीड़ित है जिसकी अवधि उस प्रार्थना-पत्र देने के सन्निहित काल से आरम्भ करके एक वर्ष से कम नहीं है।

(ऋ) एक भयानक प्रकार से कुष्ठ (कोढ़) से पीड़ित हो रहा है अथवा

(ए) विवाह की तारीख से लेकर उसे लगातार स्वाभाविक पागलपन हो चुका है अथवा

(ओ) दाम्पत्य काल के दौरान में व्यभिचार कर चुका है।"

इन नियमों में भी 1 और 2 वर्ष की अवधि के स्थान पर कम से कम 5 वर्ष की अवधि रखनी चाहिए। यह अदालती अलहदगी, संपूर्ण तथा विवाह विच्छेद से भिन्न है अतः न्यायाधीशों तथा अन्यों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे दम्पती प्रेमपूर्वक साथ रहने को पुनः उद्यत हो जाएं।

पातिव्रत धर्म के महत्त्व के विषय में जो कहा जाता है वह ठीक ही है और इसमें सन्देह नहीं कि वह हमारी संस्कृति और सभ्यता के लिए विशेष गौरव की वस्तु है जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। दुःख की बात यही है पत्नीव्रत धर्म के महत्त्व पर हिन्दू समाज में उतना बल नहीं दिया जाता अन्यथा इतनी शोचनीय दशा न होती, और न इस प्रकार के नियमों की कोई आवश्यकता होती। बड़ौदा में सन 1931 से हिन्दू डाइबोर्स लॉ अथवा सम्बन्ध विच्छेद की अनुमति का कानून विद्यमान है, किन्तु तब से अब तक उन जातियों की ओर से जहां पहले तलाक की प्रथा न थी केवल 43 की केस हुए हैं जिन में मुख्य आधार पति की ओर से क्रूरता और परित्याग ही था।

अतः इन उपर्युक्त धाराओं की भी न जानते हुए अज्ञ जनता में उत्तेजना उत्पन्न करने के लिए जो यह फैलाया जा रहा है कि इस बिल के अनुसार जब इच्छा होगी पति-पत्नी एक दूसरे का परित्याग कर देंगे और इस प्रकार हिन्दू जाति और उसकी संस्कृति का नाश हो जायेगा, यह बात सर्वथा असत्य है।

धारा 34 में स्पष्ट कहा गया है कि "कोई भी विवाह तब तक कानूनी तौर पर परित्यक्त हुआ नहीं विचारा जायेगा जब तक कि उस पर किसी समुचित आदालत द्वारा यह घोषित करते हुए डिग्री नहीं दी जाती कि ऐसा विवाह या तो विवाह-विच्छेद के लिये दिये प्रार्थना-पत्र पर खतम किया गया है अथवा किसी अन्य ऐसी कानूनी कार्यवाही में समाप्त किया गया है जिसमें विवाह का जायजपन (वैधता) विचारणीय विषय था।"

धारा 44—विवाह समाप्ति सम्बन्धी प्रत्येक डिग्री जो जिला जज द्वारा दी गई है वह हाईकोर्ट द्वारा पक्का होने का विषय होगी। इत्यादि इन नियमों का दुरुपयोग किसी भी अवस्था में न होने पाए और इन्हें नर्म न बना दिया जाय (जैसे कि पाश्चात्य देशों में है) यह चेतावनी देना आवश्यक है। "भारत में लगभग 90 प्रतिशत जातिभेद की दृष्टि से शूद्रों में आते हैं। जिनमें सम्बन्ध-विच्छेद की प्रथा किसी न किसी रूप में प्रचलित है", यह माननीय डा. अम्बेडकर का कथन कहां तक ठीक है यह मुझे ज्ञात नहीं। सम्भवतः इसमें कुछ अत्युक्ति हो। जातिभेद की अनिश्चितता के कारण भी ऐसा संभव है तथापि इसे मैं तलाक की प्रथा को उत्तम समझने अथवा उसे अपनाने की युक्ति के रूप में मानने को उद्यत नहीं। हां सर्वथा अन्तिम साधन के रूप में उपायान्तर न होने पर ही उसकी अनुमति अति विशेष अवस्थाओं में दी जा सकती है। मैंने ये बातें समस्त हितैषियों के विचारार्थ लिखी हैं। आशा है समाजहित और शास्त्रीय वचनों को ध्यान में रखते हुए इन पर विद्वान् लोग निष्पक्ष होकर विचार करेंगे। यदि वर्तमान शोचनीय परिस्थिति का अन्य कोई प्रतिकार हो सकता है तो उसका भी निर्देश करेंगे।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर विचार-5)

दत्तक विधान और संरक्षकता

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

हिन्दू कोड बिल के तृतीय भाग में दत्तक विधान अथवा गोद लेने विषयक नियम हैं और चतुर्थ भाग में अल्पवयस्कता (नाबालिगपन) और संरक्षकतादि विषयक। इन दोनों भागों में वर्णित मुख्य-मुख्य धाराओं पर मैं इस लेख में संक्षिप्त विचार करूंगा।

अभी तक हिन्दुओं में गोद लेने विषयक भिन्न-भिन्न प्रकार रहे हैं। भाग 3 में उन्हें एकरूपता देने का यत्न किया गया है जो प्रशंसनीय है।

'गोद लेने के विषय में योग्यता' शीर्षक की धारा 54 में कहा गया है कि कोई भी ऐसा कि हिन्दू पुरुष जिसके होश व हवास (स्वस्थ मानसिक अवस्था) कायम है। और अपनी आयु के 18 वर्ष पूरे कर चुका है, वह पुत्र गोद (दत्तक) लेने की योग्यता रखता है।

किन्तु शर्त यह है कि कोई भी हिन्दू पुरुष अपनी पत्नी की अनुमति ग्रहण किये बिना गोद नहीं लेगा। मेरी सम्मति में दत्तक पुत्र लेने के लिए 18 वर्ष की आयु सर्वथा अपर्याप्त है। कम से कम 25 वर्ष की आयु का नियम रखना चाहिये। जैसा कि मैं इस लेखमाला के प्रथम लेख में बता चुका हूं इस कोड बिल के बनाने वालों ने हिन्दुत्व की रक्षा का ध्यान रखते हुए धारा 62 के अंश (3) में माता को दत्तक लेने का अधिकार दिया है, यदि बच्चे के पिता ने हिन्दू-धर्म को त्याग दिया हो।

यदि विधवा ने हिन्दू धर्म त्याग दिया हो तो धारा 61 के अंश (3) में उसके गोद लेने के अधिकार को समाप्त माना गया है। कोई भी हिन्दू धर्म प्रेमी इस भावना का अभिनन्दन किये बिना नहीं रह सकता।

'गोद लिये जाने की योग्यता' विषयक धारा 63 में बताया गया है कि कोई भी व्यक्ति तब तक गोद लिये जाने योग्य क्षमता नहीं रखेगा जब तक कि निम्नलिखित शर्तों के सम्बन्ध में तसल्ली नहीं हो जाती :

(१) वह हिंदू है।

(२) वह विवाहित नहीं है।

(३) वह पहले से ही गोद नहीं लिया जा चुका है।

(४) वह अपनी आयु के 15 वर्ष पूरे नहीं कर चुका है।

इनमें कोई ऐसी बात नहीं है जिस पर आक्षेप किया जा सके। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गोद लेने के विषय में वर्तमान हिंदू विधान (कानून) में विद्यमान जाति विषयक प्रतिबन्ध को हटा दिया गया है। वर्तमान कानून के अनुसार केवल उसी बालक को दत्तक के रूप में लिया जा सकता है जो गोद लेने वाले की अपनी जाति का हो । अब जाति-उपजातियों के प्रतिबंध को हटा दिया गया है। किंतु इतना ही प्रतिबंध रखा गया

है कि वह हिन्दू हो। इन शर्तों को न जानते हुए अथवा जान बूझकर भी कोड बिल विरोधियों की और से पत्रों में यह जो आन्दोलन किया गया, कि इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को चाहे वह मुसलमान व ईसाई भी क्यों न हो अब गोद लिया जा सकेगा, उसकी असत्यता स्पष्टतया ज्ञात होती है जाति विषयक प्रतिबन्ध की वस्तुतः इस विषय में कोई आवश्यकता व उपयोगिता नहीं, अतः आशा है उदार मनोवृत्ति वाले सभी समाजहितैषी इस धारा का वर्तमान रूप में स्वागत करेंगे। संकीर्ण मनोवृत्ति वाले कूपमंडूकों का तो इससे अप्रसन्न होना स्वाभाविक है किन्तु इस संकीर्णता से समाज और राष्ट्र की उन्नति असम्भव है। हां, जो अपनी कल्पित जाति-उपजाति तक दत्तक लेने के अधिकार को सीमित रखना चाहें उनको ये नियम ऐसा करने से रोकते नहीं, उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है।

दत्तक विधान में एक मुख्य परिवर्तन जो प्रवर समिति ने किया है वह इस प्रकरण में उल्लेखनीय है। वर्तमान विधान के अनुसार दत्तक पुत्र विधवा की, जिस ने उसे गोद में लिया है, सारी सम्पत्ति पर अधिकार रख सकता था और इस के कारण बड़ी मुकदमेवाजी होती रहती थी और गोद लेने वाली विधवा की अवस्था बड़ी दयनीय हो जाती थी। अब धारा 68 में इस सम्बन्ध में कहा गया है कि : (1) जहां पर कि इस कोड के आरम्भ होने के बाद कभी विधवा गोद लेती है उस द्वारा गोद लिया हुआ पुत्रः–

(अ) उस विधवा या उस की सौत विधवाओं (यदि कोई है) द्वारा उसके गोद लेने वाले पिता के वारिस होने के रूप में ऐसी जायजाद में से, जो कि उस गोद लेने के कार्य के पहले सन्निहित काल में विद्यमान थी, उत्तराधिकार में प्राप्त की गई थी, उस का आधा लेगा।

आशा है विचारशील जनता द्वारा इस नवीन नियम का जो अनुभव से लाभ उठा कर विधवा के प्रति सहानुभूति की भावना से बनाया गया है, स्वागत व अभिनन्दन किया जायेगा।

नाबालिग और उसके संरक्षक के सम्बन्ध में जो धाराएं भाग 4 में दी गई हैं, उनके सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। धारा 78 में हिन्दू नाबालिग (अल्पवयस्क) के स्वाभाविक संरक्षक के विषय में कहा गया हैः–

किसी नाबालिग हिन्दू की निजता (फयतहण) तथा उसके साथ साथ उसकी सम्पत्ति के मामले में उसके स्वाभाविक संरक्षक हैं–

(आ) किसी बालक या अविवाहित कन्या के मामले में पिता और उस के बाद माता, किन्तु शर्त, यह है कि ऐसे नाबालिग का संरक्षण (धगतवहनख) जो कि अपनी आयु के तीन वर्ष समाप्त नहीं कर पाया है साधारणतया उसकी माता का होगा।

(इ) किसी नाजायज बालक अथवा अविवाहित कन्या के मामले में माता और उसके बाद पिता।

(उ) किसी विवाहित लड़की के मामले में उसका पति किन्तु शर्त यह है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति इस धारा के विधानों के अधीन किसी नाबालिग का संरक्षक होने का अधिकार नहीं रखेगा।

(अ) यदि वह हिन्दू धर्म को त्याग चुका है।

(इ) यदि वह पूर्णतया और अन्तिम रूप में धारा 110 की उपधारा (1) में वर्णित रीतियों में से किसी रीति अनुसार संसार को त्याग चुका है।

धारा 81 में बताया गया है कि जहां स्वाभाविक संरक्षक हिन्दू धर्म को त्याग चुका है वहां उसकी अधिकार सत्ता का खंडन हो जायेगा। धारा 83 में बताया गया है कि किसी नाबालिग हिन्दू के संरक्षक का कर्तव्य होगा कि वह ऐसे नाबालिग का हिन्दू के रूप में पालन पोषण करे कोई भी हिन्दू धर्म से प्रेम रखने वाला व्यक्ति हिन्दुत्व पोषक इन धाराओं का अभिनन्दन किये बिना नहीं रह सकता। एक और बात जिसका इस प्रसंग में उल्लेख और समर्थन मुझे आवश्यक प्रतीत होता है वह नाबालिग बच्चों पर माता के अधिकार की स्वीकृति विषयक है। अब तक के विधान में यह ज्ञात हुआ है कि इसकी उपेक्षा की जाती थी, यद्यपि शास्त्रों के अनुसार माता का स्थान सबसे ऊंचा है। यहां तक कि मनुस्मृति अ. 2 श्लोक 145 में लिखा है कि **'उपाध्यायान् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता सहस्रतु पितृन्माता, गौरवेणातिरिच्यते।'** अर्थात आचार्य का स्थान 10 उपाध्यायों से भी बढ़ कर है, पिता का गौरव 100 आचार्यों और माता का 1000 पिताओं से भी बढ़ कर है।

इस दृष्टि से इन उपर उद्धृत धाराओं और धारा 82 के इस अंश का कि 'किन्तु शर्त यह है कि इस धारा में किसी भी ऐसी बात का होना नहीं विचारा जायेगा जो किसी भी व्यक्ति के संरक्षक का कार्य पूरा करने के लिए साधिकार कर सके यदि ऐसे नाबालिग की माता जीवित है और अपने ऐसे नाबालिग बच्चे की स्वाभाविक संरक्षिका होने की क्षमता या योग्यता रखती है।' हम अभिनन्दन करते हैं।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर विचार-6)

सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकार

(पूर्वार्ध)

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

इस लेख में मैं उन धाराओं पर कुछ विचार करना चाहता हूं जिनका सम्बन्ध 'स्त्रियों के सम्पत्ति में अधिकार' के साथ है। पुत्रियों के उस सम्पत्ति में अधिकार पर मैं अगले लेख में विचार करूंगा। ये दोनों विषय ही बड़े विवादास्पद और कठिन है। मैने स्वयं अनेक दिनों तक इन विषयों पर शास्त्रीय तथा व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया है और मुझे यह लिखने में संकोच नहीं कि अभी तक मैं सर्वथा निश्चित परिणाम पर पहुचने में पूर्णतया समर्थ नहीं हो सका तथापि अनेक विचारों को लेखबद्ध करना मुझे उचित प्रतीत होता है ताकि विचारशील जनता तथा विद्वन्मंडली उन पर गम्भीरता से विचार कर सके।

स्त्रियों तथा विधवाओं का सम्पत्ति में अधिकार होना चाहिए या नहीं और यदि होना चाहिये तो वह सीमित हो अथवा पूर्ण जैसा कि इस बिल की धारा 91 एवं 93 में उल्लिखित है। इन धाराओं में कहा गया है :

स्त्री की सम्पत्ति के प्रकार-(1) इस कोड के अस्तित्व में सम्पूर्णतया आने के बाद किसी स्त्री द्वारा जो भी सम्पत्ति प्राप्त की जायेगी वह निश्चयात्मक वा निजी (Absolute) उसकी सम्पत्ति होगी।

अपवाद-(2) उपधारा (1) में उल्लिखित कोई बात किसी ऐसी सम्पत्ति पर लागू नहीं होगी जो कि स्त्री द्वारा बतौर दान के या किसी वसीयतनामे के अधीन प्राप्त की गई है और जहां दान एवं वसीयतनामे की शर्तें स्पष्टरूप या आनुषंगिक रूप में ऐसी सम्पत्ति के बारे में सीमित अधिकार प्रदान करती है बशर्ते कि उक्त आनुषंगिक आदेश का उद्भव उस स्त्री जाति के कारण ही नहीं होता।

व्याख्या-इस धारा में 'सम्पत्ति में स्त्री द्वारा उपलब्ध चल और अचल उभय सम्पत्तियों का समावेश होगा, फिर चाहे यह प्राप्ति उसके विवाह से पहले या बाद हुई हो अथवा वैधव्यकाल के मध्य में हुई हो और चाहे वह उत्तराधिकारी के रूप में या किसी कार्य के फलस्वरूप अस्तित्व में आई हो या बंटवारे पर अथवा किसी सम्बन्धी या अन्य व्यक्ति द्वारा किसी दान से या अपनी चातुरी या प्रयत्न से या खरीद से या बहुकालबोधक अधिकार से किसी तरीके से प्राप्त हुई हो।

धारा 93-स्त्रीधन-पत्नी की अमानत इस कोड के आरम्भ होने के बाद किसी विवाह के संस्कार सम्पूर्ण होने की अवस्था में कोई भी ऐसा स्त्रीधन (डावरी या दहेज) जो कि उस विवाह प्रसंग पर अथवा उसकी किसी शर्त के रूप में या उसके सम्बन्ध में एक उपहार के रूप में दिया गया है वह उस स्त्री की सम्पत्ति समझा जायेगा जिसका कि इस प्रकार विवाहसंस्कार सम्पन्न किया गया है।

(2) जहां ऐसी स्त्री के अतिरिक्त कि जिसका इस प्रकार विवाह संस्कार सम्पन्न किया गया है किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कोई स्त्रीधन प्राप्त किया जाता है, तो उस अवस्था में ऐसे व्यक्ति को वह अपने पास उस स्त्री के लाभ तथा व्यक्तिगत उपयोग के लिए एक अमानत के रूप में रखना होगा तथा जब वह स्त्री अपनी आयु का 18वां वर्ष पूरा करे तब दे देना होगा और यदि वह अपनी आयु की उक्त अवधि पूरी करने से पहले ही मर जाए तो भाग 7 में निश्चित किये गये उस के उत्तराधिकारियों के नाम परिवर्तित कर देना होगा। इन धाराओं में निर्दिष्ट वस्तु गंभ्भीरता से विचार योग्य है।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव साम्रज्ञीश्वश्र वां भव । ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥

10/85/45

यथा सिन्धुनदीनां साम्राज्यं सुपुवे वृषा । एवं त्वं सम्राज्ञेधि पत्युरस्तं परेत्य।

(अथर्व. 14/1/43)

वेदों में पत्नी का स्थान बहुत उच्च माना गया है तथा उस के लिए अनेक वेद मन्त्रों में सम्राज्ञी शब्द का प्रयोग किया गया है जिस का अर्थ सम्+राज्ञी अपने गुणों से भली भांति चमकने वाली और रानी होता है।

यह मन्त्र इस विषय में विशेष रूप से द्रष्टव्य है। सम+राज्ञी का अर्थ सम्=मिलकर (पति से मिलकर) अथवा उसके साथ राज्य करने वाली यह भी होता है। इन मन्त्रों में नव वधू को सम्बोधित करते हुए घर की सम्राज्ञी बनने का आदेश व आशीर्वाद दिया गया है और अपने श्वसुर, देवर, ननद, सास आदि सब सम्बन्धियों को सद्व्यवहार से प्रसन्न करने अथवा अपने गुणों से चमकने का उपदेश दिया गया है। **'गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासः।'** (ऋ. 10/85/16) तथा **'अस्मिन् गृहे गार्दपत्याय जागृहि'** (ऋ. 10/85/27) इत्यादि मन्त्रों में भी स्त्री को गृह पत्नी अथवा घर की स्वामिनी बनने का उपदेश व आदेश है। **'आशसाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् । पत्युरनव्रता भूत्वा संनह्यस्वामृताय कम् ॥'** अथर्व (14/1/42) **'रथा सहस्प वर्चसा, इमौ स्तामनुपक्षितौ'** (अ. 3/78/2) इत्यादि मन्त्रों में भी वधु को कहा गया है कि तुम पति से प्रेम, प्रसन्नता, सन्तान, सौभाग्य, ऐश्वर्य की कामना करती हुई उसकी अनुव्रता हो कर सुख प्राप्त करो। ये दोनों (पति-पत्नी) सब प्रकार से धन से भरपूर हों। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद स्त्रियों के प्रति उच्च भाव दर्शाते हुए उनका पति की सम्पत्ति तथा समस्त सुख साधनों में समान अधिकार का निर्देश करते हैं।

मध्यकालीन साहित्य में स्त्रियों की स्थिति को हम अनेक अंशों में गिरा हुआ पाते हैं। **'अनृतं स्त्री', 'निरिन्द्रिया ह्यमंत्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः॥'** तथा **'विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी'** (श्री शंकराचार्य कृत प्रश्नोत्तरी) इत्यादि वाक्य हमें उस काल की अनेक स्मृतियों तथा अन्य ग्रन्थों में दिखाई देते हैं जिनमें स्त्रियों को अविश्वसनीय, असत्यस्वरूपिणी तथा अशुभा मानकर उनको सर्वथा अस्वतन्त्र तथा शूद्र व दासी समान माना गया है, किंतु ऐसे वेद विरुद्ध वचनों को चाहे वे किसी भी मुनि के नाम पर निर्मित

ग्रंथ में पाये जाएँ, मानने से हमें सर्वथा इन्कार कर देना चाहिए क्योंकि वेद विरुद्ध होने के अतिरिक्त वे न्याय बुद्धि के भी विपरीत हैं। दु:ख की बात यह है कि ऐसे स्त्रियों के प्रति हीनता और अविश्वास सूचक भाव लोगों के हृदयों में घर किए हुए हैं और इन विषयों पर जब कभी विचार किया जाता है तो प्राय: पुरुषों के मुख से इस प्रकार के अविश्वाससूचक वाक्य ही निकलते हैं। जैसे कि मैंने इन दिनों अनेक सुशिक्षित महानुभावों से भी बातचीत करके देखा है।

स्त्रियों के सम्पत्ति में अधिकार के सम्बन्ध में शास्त्रीय दृष्टि से विचार करते हुए हमें स्त्रीधन के स्वरूप को समझ लेने की आवश्यकता है। जिस पर प्राय: सभी स्मृतिकारों ने पूर्ण अधिकार स्वीकार किया है। मनुस्मृति 9/194 में स्त्रीधन का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है–

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं, दत्तंच प्रीतिकर्मणि । भ्रातृमातृ पितृ प्राप्तं 'षड्विधं स्त्रिधनं स्मृतम् ॥

अर्थात विवाह के समय में अग्नि के समक्ष जो धन स्त्री को दिया जाता है, पति के गृह से जब पिता के घर स्त्री जाती है उस समय श्वशुरादि से जो प्राप्त होता है, पति द्वारा जो प्रेमोपहार रूप में दिया जाता है तथा भाई, माता और पिता द्वारा समय पर जो कुछ प्राप्त होता है, यह 6 प्रकार का स्त्रीधन माना जाता है। याज्ञवल्क्यस्मृति 2/143 में **'पितृ मातृ पति भ्रातृदत्त मध्यग्न्युपागतम् अधिवेदनिकाद्य च, स्त्रीधनं परिकीर्तितम्॥'** इस श्लोक में स्त्रीधन का स्वरूप प्राय: मनुस्मृति के समान ही बताते हुए आदि शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसकी व्याख्या में विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा टीका में लिखा है कि **'आद्य शब्देन रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमप्राप्तमेतन् स्त्री धनं मन्वादिभिरुक्तम्।'** (याज्ञवल्क्य स्मृति मिताक्षरा, सुबोधिनी बाल भट्टयादी टीका सहित मद्रास पृ. 842) अर्थात् आदि शब्द से दाय भाग, खरीद बंटवारा, लाभ तथा अन्य प्रकार से प्राप्त धन, ग्रहण है।

नारदस्मृति में भी **'अध्यग्न्यध्यावाहनिकं, भर्तृदायस्तथैव च ! भ्रातृदत्तं पितृभ्यांच, षडविधं स्त्रीधनं स्मृतम ॥।'** (ना. स्मृ. 13/8) इन शब्दों में मनुस्मृति के समान स्त्रीधन का स्वरूप बताया गया है। भर्तृदाय शब्द का स्पष्ट रूप से वहां प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ पति द्वारा प्रदत्त है।

इस स्त्रीधन पर स्त्रियों का पूर्ण अधिकार प्राय: स्मृतिकारों तथा महाभारतकार ने स्वीकार किया है, महाभारत 18/1 में कहा है :

स्त्री धनस्पेशिनी स्त्री स्पाद, भर्ताच तदनुज्ञया । भोक्तु 'रक्षयितु' 'योम्यो भर्तु' नाशयितु न च ॥

अर्थात स्त्रीधन की स्वामिनी स्त्री है। उसकी अनुमति से ही पति विशेष अवस्थाओं में उसका उपयोग कर सकता है अन्यथा नहीं। यहां तक कि इस विषय में लिखा है:

'न भर्ता नैवं च सुतो न पिता भ्रातरों न च । आदाने वा विसर्गे वा, स्त्रीधने प्रभविष्णव: ॥'

(दायभाग 78 स्मृति चन्द्रिका 282 पराशर माधवीय 556)

अर्थात् स्त्रीधन को लेने और उसको बेचने आदि का अधिकार पति, पुत्र, पिता, भ्राता आदि किसी को भी नहीं है।

सौदायिक धन का लक्षण शुक्रनीति 4/793 में इस प्रकार किया गया है :

ऊढया कन्यया वापि, पत्युः पितृगृहेऽपिवा। भ्रातुः सकाशात्पित्रोर्बा, लब्धं सौदायिकं स्मृतम् । (स्मृतिसार 60, स्मृति चन्द्रिका 282, पराशर माधवीय 549)

अर्थात् विवाहिता अथवा अविवाहिता कन्या पति व पिता के घर से अथवा भाई और माता-पिता के पास से जो कुछ प्राप्त करती है उसे सौदायिक कहते हैं। उस सौदायिक धन के विषय में शास्त्रकारों ने कहा है :

सौदायिकं धनं प्राप्य, स्त्रीणां स्वातंत्र्यमिष्यते। यस्मात्तदातृशंस्पार्थ, तैर्दत्तमुपजीवनम् ॥

सौदायिके सदा स्त्रीणां, स्वातंत्र्यं प्ररिकीर्तितम्! विक्रये चैव दाने च, यथेष्ट स्थावरेप्वपि॥

(शुक्रनीति 4/792-93 कात्यायनस्मृति, दायभाग 76, स्मृति चन्द्रिका 282, पराशर माधवीय 549)

अर्थात्, सौदायिक धन में स्त्रियों को सदा पूर्ण स्वतन्त्रता है। उसको बेचने और दान करने का और स्थावर सम्पत्ति-भूमि आदि के विषय में भी यथेष्ट व इच्छानुसार कार्य करने का उन्हें पूर्ण अधिकार है।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार-7)

सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकार

(उत्तरार्ध)

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल में स्त्रियों के सम्पत्ति विषयक अधिकार के विषय में इस लेख के पूर्वार्ध में उद्धृत धाराओं में जो कुछ कहा गया है वह इन श्लोकों में दिए भाव के सर्वथा अनुकूल है अतः इन प्रस्तावों को शास्त्रविरुद्ध बताना सर्वथा असत्य प्रमाणित होता है। किन्तु इस विषय में स्मृतिकारों का भी परस्पर मतभेद अवश्य है, विशेषतः इस विषय में कि विधवाओं का पति की चल और अचल सम्पत्ति में अधिकार सीमित होना चाहिए अथवा पूर्ण। उदाहरणार्थ नारद स्मृति में लिखा है:

भर्त्रा प्रीतेन यद्दत्तं, स्त्रियै तस्मिन् मृतेऽपितत्।

सा यथा काममश्नीयाद् दद्याद्वा स्थावराद्दते ॥

(नारद स्मृति-व्यवहार मयूख पृ. 97 में उद्धृत वचन)

अर्थात पति ने पत्नी को प्रेमपूर्वक जो कुछ दिया हो उसके मरने पर वह उस धन का इच्छानुसार उपयोग करे अथवा उसे दान दे किन्तु स्थावर या अचल सम्पत्ति के विषय में उसे यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

एक दूसरे स्थान पर भी 2/144 में नारद ने यही बात कही है:

अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती गुरौ स्थिता।

भुंजीतामरणात्क्षान्ता दायादा ऊर्ध्वमाप्नुयुः ॥

अर्थात पुत्र रहिता पवित्रचरण वाली विधवा क्षमाशीला होकर मरणपर्यंत पति की सम्पत्ति का उपभोग करे। उसके पश्चात वह सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों को मिले।

महाभारत अनुशासन पर्व 47/23-24 में लिखा है :-

त्रिसहस्रपरोदायः, स्त्रियै देयो धनस्य वै।

भर्त्रा तच्च धनं दत्तं यथार्हं भोक्तुमर्हति ।

स्त्रीणां च पतिदायाद्यम्, उपभोगफलं स्मृतम् ॥

अर्थात् पति को चाहिये कि वह पत्नी को 3000 से अधिक कार्षापण (एक सिक्का जिसका ठीक परिणाम हमें अभी तक ज्ञात नहीं हो सका) दायरूप में दे दे और वह पति के दिये उस धन का यथोचित रूप से उपभोग कर सकती है। पति का दिया धन व सम्पत्ति उपभोग फल अर्थात जीवितकाल तक उपयोग के लिये ही है।

यही बात कौटलीय अर्थशास्त्रकार ने-

'अपुत्रा पतिशयनं पालयन्ती गुरूसमीपे स्त्रीधनम् आ आयुः क्षयाद् भुञ्जीत । अपदर्थं हि स्त्रीधनम् । उर्ध्वं दायादं गच्छेत् ॥ कौ. 3/2 में कही है।

इसमें भी विधवा को आयुपर्यन्त पति की सम्पत्ति के भोग का अधिकार दिया गया है। इसके पश्चात् वह उसके उत्तराधिकारियों को मिले । याज्ञवल्क्य स्मृति 2/16 की मिताक्षरा टीका में विज्ञानेश्वर का पुत्र रहित पति की सम्पत्ति पर पूर्णाधिकार–

'तस्मादपुत्रस्य स्वर्यातस्यासंसृष्टिनी धनं परिणीता स्त्री संयता सकलमेव गृहाति।'

इन शब्दों द्वारा प्रकट किया है। अर्थात पुत्ररहित, सम्मिलित कुटुम्ब से विभक्त पति की संयमशीला साध्वी पत्नी सारा धन संग्रह करती है।

इस प्रकार स्मृतिकारों तथा निबन्धकारों का परस्पर मतभेद इस विषय में स्पष्ट है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से भी इस पर विचार आवश्यक है।

जो लोग हिन्दू कोड बिल में वर्णित धाराओं के विरोधी हैं उनमें से अधिकतर लोगों का यह कहना है कि स्त्रियां सम्पत्ति का प्रबन्ध करने में असमर्थ होती हैं अतः उनको पूर्णाधिकार देना ठीक न होगा। इस से न केवल उनको, प्रत्युत उन के कुल को भी हानि होगी। वस्तुतः यह बात अनुभव के आधार पर सत्य नहीं प्रमाणित होती। बम्बई में जहां कन्याओं को पिता की सम्पत्ति में पूर्णाधिकार प्राप्त है, कहा जाता है कि, उन्होंने सम्पत्ति के प्रबन्ध में पुरुषों से भी अधिक योग्यता का प्रायः परिचय दिया है। एक बात प्रस्ताव के विरुद्ध यह कही जाती है कि स्त्रियों में केवल 3 प्रतिशत शिक्षिता हैं, शेष 97 प्रतिशत अशिक्षित हैं। अतः इस प्रकार का अधिकार देना उनके लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होगा। यह युक्ति कुछ अंश तक ठीक प्रतीत होती है, किंतु इसके अनुसार पुरुषों में से भी केवल 10 प्रतिशत के लगभग शिक्षित और शेष अशिक्षित हैं अतः उन 90 प्रतिशत लोगों को भी वह अधिकार न देना चाहिए । हिन्दू विश्व विद्यालय काशी के एक सुयोग्य उपाध्याय डॉ. अनंत सदाशिव अलतेकर ने अपनी पुस्तक (The position of women in Hindu civilisation) में यह सुझाव रक्खा है कि स्त्रियों को सम्पत्ति पर पूर्णाधिकार देने के लिए शिक्षा का मानदण्ड नियत कर देना चाहिए। उस शिक्षा योग्यता से सम्पन्न महिलाएं ही उस अधिकार का उपयोग कर सकें, अन्य नहीं। यह प्रस्ताव मुझे भी उपादय प्रतीत होता है इससे यह अवश्य होगा कि जो युक्ति अशिक्षिता होने के कारण स्त्रियों के ठगे जाने की दी जाती है वह निर्बल हो जाएगी। किन्तु उस अवस्था में क्या पुरुषों के अधिकार पर भी ऐसा प्रतिबन्ध लगाना न्यायसंगत न होगा?

एक भय यह प्रकट किया जाता है कि यदि विधवाओं को पति की चल, अचल दोनों प्रकार की सम्पत्ति में पूर्णाधिकार दिया जाएगा तो इसका दुरुपयोग होने की संभावना बहुत अधिक है। अतः एक प्रस्ताव यह किया जाता है। जैसे कि श्री चांदकरण शारदा जी ने हिंदू ला कमेटी के सामने साक्षी देते हुए किया था, कि चल सम्पत्ति में स्त्रियों को पूर्णाधिकार दिया जाय किन्तु अचल सम्पत्ति में अधिकार जिससे वह उस परिवार में ही रहे। यह प्रस्ताव भी मुझे उत्तम और स्वीकरणीय प्रतीत होता है यद्यपि उपर्युक्त संभावना इससे सर्वथा दूर हो जाएगी ऐसा नहीं कहा जा सकता। एक प्रस्ताव यह भी है कि जहां सन्तान तथा अन्य उत्तराधिकारी न हों वहीं विधवाओं को पति की सम्पत्ति पर पूर्णाधिकार दिया जाए अन्यथा नहीं। मुझे तो इसकी अपेक्षा भी पूर्वोद्धृत प्रस्ताव ही

कि पति की चल सम्पत्ति में शिक्षित विधवाओं का पूर्णाधिकार हो वर्तमान परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। आजकल जब कि नैतिक मर्यादा शिथिल हो रही है और धूर्त वंचकों का जाल सर्वत्र फैला हुआ प्रतीत होता है, क्या यह अच्छा न होगा कि इस विषय में अधिक सावधानी से काम लिया जाए? कुछ घरों तक उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार बने कानून का परिणाम देखने के पश्चात् इस में आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है। इस विषय में अत्यधिक शीघ्रता की अवश्यकता नहीं। आशा है विचारशील समाजहितैषी इस विषय पर गम्भीरता से विचार करेंगे।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार-8)

स्त्रियों के दायभागाधिकार

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

स्त्रियों के सम्पत्ति में अधिकार विषयक धाराओं पर शास्त्रीय तथा व्यावहारिक दृष्टि से कुछ विचार करने के पश्चात अब मैं हिन्दू कोड बिल की धारा 100 में उस अंश पर कुछ विचार करना चाहता हूं जिसमें किसी वसीयतहीन मृत व्यक्ति की सम्पत्ति के बंटवारे के सम्बन्ध में नियम बतलाते हुए यह कहा गया कि 'प्रत्येक पुत्री का हिस्सा पुत्र के हिस्से के बराबर होगा' ।

निस्सन्देह यह अत्यधिक विवादास्पद धारा है जिसके विरुद्ध आंदोलन भी सबसे अधिक किया जा रहा है । यहां तक कहा जा रहा है कि यह सब मुसलमानी प्रथा है जिसे हिंदुओं पर लादने का यत्न हो रहा है । इस गम्भीर विषय पर पहले मैं शास्त्रीय दृष्टी से कुछ विचार विद्धानों के समक्ष रखना चाहता हूं । इसके पश्चात् व्यावहारिक दृष्टी से भी इस पर विचार किया जायेगा । जिस रूप में यह धारा प्रस्तुत कोड बिल में रखी गई है कि 'प्रत्येक पुत्री का हिस्सा पुत्र के बराबर होगा' मैं उस रूप के पक्ष में नहीं हूं । तथापि यह आवश्यक है कि इन कन्याओं के पैतृक सम्पत्ति में अधिकार की प्रथा का मुसलमानी, सर्वथा अशास्त्रीय तथा धर्मविरुद्ध प्रथा कहने से पूर्व, हम इस पर निष्पक्ष होकर विचार करें और इसमें परिवर्तनार्थ उचित संशोधन प्रस्तुत करें ।

पुत्रियों का पैतृक सम्पत्ति में अधिकार होना चाहिए या नहीं, यदि हां तो किनका और कितना इस पर हमें शास्त्रीय दृष्टि से पृथक् विचार करना उचित होगा । सबसे पूर्व मैं अविवाहित तथा विवाह न कराने वाली पुत्रियों के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत करूंगा । उसके पश्चात् पिता की एकमात्र पुत्री के सम्बन्ध में और अन्त में विवाहिता पुत्रियों के सम्बन्ध में ।

ऋग्वेद 2/17/7 में निम्न मंत्र आया है :

''अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् । कृधि प्रकेतमुपमास्याभर तद् मे भागं तन्वो येन मामहः ॥ इस मन्त्र का श्री सायनाचार्य आदि सब भाष्यकारों ने इस प्रकार भाष्य किया है–

हे इन्द्र अमाजू :–**यावज्जीवं गृह एव जीर्यन्ती पित्रोः सचा-माता-पितृभ्यां सह भवन्ती तयोः शुश्रूषणपरा पतिमलभमानः सती दुहिता (समानात्) आत्मनः पित्रोश्च साधारणात् (सदसः) गृहात्।**

गृह उपस्यामव यथा भागं याचति तथा स्तोताहं भगं भजनीयं धनं स्वामिये, त्वां याचे ॥"

इस का तात्पर्य यह है जिस प्रकार जीवनपर्यन्त माता-पिता के घर में भी रह कर अपने भाग को माता-पिता से मांगती है वैसे ही मैं स्तोता तुझ इन्द्र (परमेश्वर) से सेवनीय ऐश्वर्य की प्रार्थना करता हूं । 'धर्मकोष' के सम्पादक पं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी तर्कतीर्थ ने इस वेद मन्त्र को व्यवहार काण्ड उत्तरार्द्ध पृ. 1415 में उद्धृत करते हुए उसका शीर्षक यह दिया है, 'अनूढ दुहिता पैत्र्यभागहारिणी पुत्री पैतृक संपत्ति में भाग ग्रहण करने की अधिकारिणी होती है ।'

इस विषय में सम्भवतः किसी भी विचारशील व्यक्ति का मतभेद न होगा कि जो किसी भी विशेष उद्देश्य से सुलभा, गार्गी आदि, की तरह नैतिक ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करें अथवा अन्य किसी कारण से विवाह न करें उनको पैतृक संपत्ति में से भाग मिलना चाहिए।

सुप्रसिद्ध निरुक्त के प्रणेता श्री यास्काचार्य ने निम्नलिखित वेद मन्त्र पुत्रियों के दाय भाग के सम्बन्ध में उद्धृत किया है–

"शासद्वन्हिर्दुहितुर्नर्त्यगाद् विद्वां ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।

पिता यत्र दुहितुः सेकमृंजन्, संशग्म्येन मनसादधन्वे ॥"

(ऋ. 3/31/1)

इस मन्त्र को उद्धृत करने से पूर्व श्री यास्काचार्य ने लिखा है :

"अथैता दुहितृ दायाद उदाहरन्ति पुत्रदायाद इत्येके।"

इसके भाष्य में दुर्गाचार्य ने लिखा है :

"एनां ऋचं शासद् वह्निः इत्यादी या वक्ष्यमाणा ता दुहितुर्दायादे अर्थ उदाहरन्ति धर्मविंदः। अस्याम् ऋचि वक्षयमाणायां दुहितुरपि दायाद्यत्वमस्तीति दृश्यते ।"

अर्थात् शासद् वह्निः इस ऋचा को जानने वाले पुत्री को दाय भाग का अधिकार है, एस अर्थ में उद्धृत करते हैं । इस ऋचा से ज्ञात होता है कि पुत्री को भी दाय भाग का अधिकार है।

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए श्री यास्काचार्य ने लिखा है :

विद्वान ऋतस्य दिमितिं सपर्यन् विधानं पूजयन् अर्थात् वेद के विधान का आदर करता हुआ । वह वेद का विधान क्या है इसका यास्काचार्य जी ने आगे इस प्रकार प्रतिपादन किया है जो प्रस्तुत विषय की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है :

अविशेषेण मिथुनाः पुत्रा दायादा इति । तंदेतट्टक् श्लोकाभ्यामभिहितम् अङ्वङ्गात् संभवसि हृदयादधि जायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ इति ॥ अविशेषेण पुत्राण ां दायो भवति धर्मतः 1 मिथुनानां विसर्गादौ मनुःस्वायम्भुवोऽब्रवीत ॥

अर्थात पुत्र और पुत्री दोनों को दायभाग का अधिकार है जैसे कि निम्नलिखित ऋचा में और श्लोक में बताया गया है, जिनका अर्थ यह है कि पुत्र को सम्बोधित करते हुए जो यह कहा जाता है कि तू अङ्ग-अङ्ग और हृदय से उत्पन्न होता है अतः मेरी आत्मा के तुल्य है तू सौ वर्षों तक जी, यह पुत्र पुत्री दोनों पर समान रूप से लगता है, यह वचन शत पथ ब्राह्मण 14/9/4/6, साम ब्राह्मण 1/5/17 वृहदारण्यकोषनिषद् 6/4/26, कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद् 2/11, पारस्कर गृह्यसूत्र 1/16/18, हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र 2/3/2 इत्यादि में पाया जाता है । इसी के समान निम्न वचन मनुस्मृति 9/130 में है–

यथैवात्मा तथा पुत्रः, पुत्रेण दुहिता समा । तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यों धनं हरेत् ॥

अर्थात् पुत्र अपनी आत्मा के समान होता है पुत्री पुत्र के समान होती है । उस आत्मातुल्य पुत्री के होते हुए अन्य कैसे धन ले सकता है ?

महाभारत अनुशासन पर्व 45/11 में मनुस्मृति का उपर्युक्त श्लोक ही उद्धृत किया गया है । दूसरा श्लोक जो निरुक्तकार यास्कमुनि ने स्वायम्भुव मनु के विषय में उद्धृत किया है उसका अर्थ यह है कि स्वायम्भुव मनु ने अविशेष या सामान्य रूप से पुत्र और पुत्री दोनों का धर्मानुसार दाय भाग में अधिकार होता है ऐसा सृष्टि के प्रारम्भ में बताया । स्वायम्भुव मनु का ऐसा मत वेद के आधार पर ही होना चाहिए इसलिए निरुक्तकार ने **'शासद वह्निर्दुहितुः'** इस मन्त्र को उद्धृत किया है ।

निरुक्तकार का मत स्पष्टतया लड़कियों के दाय भाग के अधिकार के पक्ष में ज्ञात होता है यद्यपि 'न दुहितर इत्येके' यह लिख कर उन्होंने दूसरा पक्ष उन लोगों का रखा है जो यह कहते हैं कि लड़कियों का दाय भाग में अधिकार नहीं है । यह लिखने की आवश्यकता कि **"स्त्रियाः दानविक्रयातिसर्गा विद्यन्ते न पुंसः"** अर्थात स्त्रियों का दान किया जाता है, उन्हें बेचा जाता है और उनका इच्छानुसार त्याग कर दिया जाता है अथवा **"तस्मात् स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांसम्"** अर्थात् स्त्री (कन्या) के उत्पन्न होने पर उसे फेंक दिया जाता है पुरुष (बालक) को नहीं, ऐसी लचर युक्तियां देकर जो यह सिद्धांत बनाते हैं कि **"तस्मात् पुमान् दायादः अदा यादा स्त्रीति विज्ञायते ।"** अर्थात पुरुष को ही दाय भाग का अधिकार है स्त्री को नहीं, उसकी अपेक्षा हमें निरुक्तकार यास्काचार्य का अपना मत अधिक उपादेय प्रतीत होता है । **'शासद् वह्निर्दुर्हित कम करें:'** यह ऋ. 3/31 का प्रथम मन्त्र जब पुत्री के दाय भाग के अधिकार का समर्थन है तो उसी सूक्त के दूसरे मन्त्र **'न तान्वो जामये'** का ठीक विरुद्ध अर्थ खींचातानी से लगाना हमें संगत प्रतीत नहीं होता । उसमें बहुत अधिक खैंचातानी दाय भाग विरोधियों को करना पड़ता है । 'मातर:' का अर्थ माता-पिता 'वह्नि' का अर्थ पुरुष करके उसके साथ जबरदस्ती अवन्हि जोड कर स्त्री, एक शुभ कर्म का कर्त्ता अर्थात् पिण्ड देने वाला पुरुष और दूसरी केवल अलंकृत होने वाली स्त्री इत्यादि अर्थ कल्पित करने पड़ते हैं । निरुक्तकार ने अपना पक्ष पहले दिखा कर इस पक्ष का निर्देश मात्र कर दिया है । महर्षि दयानन्द जी ने इसकी व्याख्या अग्नि, विद्या तथा सन्तान रक्षादि के सम्बन्ध में की है, जिसका भगिनी को भाग न देने से कोई सम्बन्ध नहीं । वेद में इस प्रकार एक ही सूक्त में परस्पर विरुद्ध दो आदेश हैं, यह कौन वेद प्रेमी स्वीकार कर सकता है ? सायणाचार्य आदि भाष्यकार क्योंकि पौराणिक विचारों के थे अत: उन्होंने स्पष्ट लिख दिया कि **पिण्डदानादिकर्तृत्वात् पुत्रोदायार्हः दुहिता तथा नेति न दायार्हा' [3/31/2 सायण भाष्य]** अर्थात् पुत्र क्योंकि मृत पितरों को पिण्ड देता है इसलिए वह दाय भाग का अधिकारी है परन्तु पुत्री पिण्ड नहीं देती इसलिए उसको दाय भाग का अधिकार नहीं । ऐसी ही बात प्राय: सभी पौराणिक भाष्यकारों ने लिखी है । कइयों ने स्त्रियों के प्रति अत्यन्त तुच्छ भाव प्रकट करते हुए उनका दाय भाग में अनधिकार माना है । जैसे कि सरस्वती विलासकार ने 363 पृ. में लिखा है, **"स्त्रीयां दाय विभागो नास्ति निरिन्द्रियत्वात्"** अर्थात स्त्रियों का दाय विभाग में अधिकार इसलिए नहीं क्योंकि वे इन्द्रियशून्या होती हैं ।

पण्डित सदायतन पाण्डेय प्रधान संयुक्त प्रांतीय धर्मसंघ ने राव कमेटी के सम्मुख साक्षी देते हुए पुत्रियों के दाय भाग मे विरुद्ध यही युक्ति दी । लड़की को जो पिता के श्राद्ध तथा पिण्ड-दान आदि में कोई भाग नहीं लेती लड़के के साथ जिसको इन कर्तव्यों का पालन करना होता है दाय भाग में अधिकार देना सर्वथा अनुचित होगा (देखो हिन्दू ला

कमेटी रिपोर्ट पृ. 130) महामहोपाध्याय चिन्नस्वामी शास्त्री आदि ने इलाहाबाद में अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभा की ओर से साक्षी देते हुए यही कहा कि लड़कियों को, जो अपने पिता का श्राद्ध नहीं करती पैतृक सम्पत्ति में कोई भाग न मिलना चाहिए । (रावकमेटी रिपोर्ट पृ. 129) इस प्रकार की निस्सार युक्तियां जो पौराणिक विचारों पर आश्रित हैं कहां तक ठीक हैं यह विचार-शील सज्जन स्वयं निर्णय करें ।

पं. लक्ष्मण शास्त्री जोशी तर्कतीर्थ ने बहिन के भाई के साथ दायादि में भाग लेने के विषय में निम्न वेदमन्त्र को धर्मकोष, व्यवहार काण्ड, उत्तरार्द्ध के पृ. 1415 में उद्धत किया है :

"एष ते रुद्र भागः सह स्वस्त्राम्बिकया तं जुपस्व ।" (शुक्ल यजुर्वेद 3/57 कण्ब संहिता 7/6, मैत्रायणी संहिता 1/10/4, तैत्तिरीय संहिता 18/6/1, शतपथ ब्राह्मण 2/6/2/9)

यहां भी बहिन के भाई के साथ दायादि में भाग का स्पष्ट निर्देश है।

"अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।" इस मंत्र में जिसकी निरुक्त 3/4 में व्याख्या की गई है अभ्रातृका कन्या का पैतृक सम्पत्ति को प्राप्त करने का स्पष्ट निर्देश है जिसका प्रायः सब स्मृतियों में भी समर्थन किया गया है जैसे कि अगले लेख में उद्धृत स्मृत्यादि वचनों से पाठकों को ज्ञात हो जायेगा ।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार–9)

स्त्रियों का दायभाग और स्मृतियां

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

अब मैं इस सम्बन्ध में प्राप्त होने वाले स्मृत्यादि ग्रन्थों के वचनों को विद्वानों के सम्मुख रखना चाहता हूं ।

मनुस्मृति 9/118 में निम्न श्लोक पाया जाता है :

स्वेभ्योंशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् । स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं, पतितः स्युरदित्सवः ॥

(मनु. 9/118)

अर्थात भाइयों को चाहिए कि अपने अपने हिस्से में से चतुर्थ भाग वे पृथक् भाग वे पृथक् 2 कन्याओं अर्थात् अपनी अविवाहित भगिनियों को दें । जो न देना चाहें वे पतित समझे जाएं ।

इस वचन में कन्याओं का लड़कों से चतुर्थ भाग लेने को अधिकार स्पष्ट तथा प्रतिपादित है।

याज्ञवल्क्य स्मृति 2/12 में भी यही बात

असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्णसंस्कृतैः । भगिन्यश्व निजावंशाददृत्वांशं तु तुरीयकम् ॥

इस श्लोक द्वारा कही गई है । इस श्लोक की मिताक्षरा टीका में विज्ञानेश ने लिखा है कि **'अनेक दूहितरोपि पितुरुर्ध्वमंशभागिन्य इति गम्यते ।** अर्थात् इससे ज्ञात होता है कि पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्रियों का भी दाय भाग में अधिकार है । इसी टीका में आगे लिखा है कि **"नच निजादंशाद् तुरीयकम् इति तुरीयांशविवक्षया संस्कार मात्रोपयोगि द्रव्यं दत्वेति व्याख्यान युक्तम् । मनुवचन विरोधात् । तस्नात् पितुरुर्ध्वं कन्याप्यंशभागिनी पूर्व चेद्यत् किंचित् पिता ददाति तदेव लभते विशेषवचनाभावादितिसर्वमनवद्यम् ।"**

(मिताक्षरा टीका).

अर्थात् यहां भगिनी को चौथा हिस्सा देने का जो विधान है उसका यह अर्थ न समझा जाए कि संस्कार के उपयोगी द्रव्य से ही यहां प्रयोजन है, चतुर्थ भाग देने से नहीं क्योंकि ऐसा मानने से मनुस्मृति (9/118) के वचन से विरोध हो जाएगा । इस लिए यह स्पष्ट है कि पिता की मृत्यु के बाद कन्या का भी उसकी सम्पत्ति में अधिकार है । जीवित काल में तो पिता कन्या को जो कुछ देता है वह उसे प्राप्त करती है । विश्वेश्वर भट्टप्रणीत मदन पारिजात नामक सुप्रसिद्ध निबन्ध ग्रन्थ में याज्ञवल्क्य स्मृति के इस श्लोक की व्याख्या करते हुए स्पष्ट लिखा है कि **"भगिन्यश्च इत्यादेस्यं तात्पर्यार्थः। भगिनीनामसंस्कृतानां विवाहं कृत्वा ताभ्यश्चतुर्थमंशं दद्यात् ।"** (मदन पारिजात 648) अर्थात् 'भगिन्यश्च' इत्यादि याज्ञवल्क्य वचन का तात्पर्य यह है कि अविवाहिता भगिनियों का विवाह संस्कार करा कर फिर उनको अपने भाग का चौथा हिस्सा दे ।

जो लोग यह मानते हैं कि भगिनी को चतुर्थ अंश केवल विवाह–संस्कारार्थ दिया जाता है, इस मत का खण्डन करते हुए मदनपारिजात में आगे लिखा है कि **"केचन एवं मन्यन्ते, पूर्वोक्तरीत्या चतुर्थमंश कन्यकायै दत्वा तेनैव विवाहः कर्तव्यो न तु समुदित द्रव्येण विवाहं कृत्वा पुनरपि चतुर्थांशदानमिति तन्मेधातिथिमिताक्षराकारादीनामनभिमतत्वादुपेक्षणीयम् ।"** (मदन पारिजात 650) अर्थात् कई ऐसा मानते हैं कि पूर्वोक्त प्रकार कन्यों को अपना चौथा

हिस्सा देकर उसी से उनका विवाह करना चाहिए न कि एकत्रित व संयुक्त द्रव्य से विवाह करके फिर उनको चौथा हिस्सा देना चाहिए । यह मत मेधातिथि, मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर इत्यादि के विरुद्ध होने के कारण उपेक्षा करने योग्य है । व्यवहार काण्ड (देखो धर्मकोष पृ. 1420).

बालम्भट्टी नामक याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका में भी यही बात कही गई है कि **"केचिदुक्तरी-त्यैव तुरीयमंशं कन्यायै दत्वा तेनैव विवाहः कार्यो न तु समुदितद्रव्येण विवाहोंऽशदानं च पृथगित्याहुः। तन्मतं खण्डयति । न चेति एतेन देशाचाराद् व्यवस्थेतिमद नपारिजातायुक्तमपास्तम् ।" (बालम्भट्टी--धर्मकोष पृ. 1421)** अर्थात् जो यह कहते हैं कि कन्या को उक्तरीति से चौथा भाग देकर उसी से विवाह करना चाहिए न कि संयुक्त द्रव्य से विवाह संस्कार करा कर चौथा भाग पृथक् देना चाहिए उनके मत का 'नच' इत्यादि के द्वारा मिताक्षराकार ने खण्डन किया है । मदन पारिजात ने अन्त में जो यह लिख दिया था कि 'अथवा देशाचार से इसकी व्यवस्था हो जायेगी उसका भी इससे खण्डन हो जाता है ।

इस विषय को कुछ विस्तार में लिखने की आवश्यकता इसलिए हुई कि प्रायः पौराणिक पण्डित मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में स्पष्ट प्रतिपादित चतुर्थ भाग देने का तात्पर्य केवल विवाह संस्कारार्थ बताकर टालमटोल का यत्न करते हैं उसकी निस्सारता और अयथार्थता विद्वानों को ज्ञात हो जाये । अब इस सम्बन्ध में अन्य स्मृत्यादि वचनों को देखिए ।

(7) नारद संहिता 14/13 में लिखा है :–

ज्येष्ठायांशोऽधिको ज्ञेयः, कनिष्ठायावरः स्मृतः । समांशभागः शेषाः स्युः, अप्रत्ता भगिनी तथा ॥ अर्थात् ज्येष्ठ भ्राता को कुछ अंश अधिक देना चाहिए, सबसे छोटे को कम। शेष भाईयों और अविवाहिता बहिन को बराबर बांटना चाहिए।

यहां अविवाहिता बहिन को पैतृक सम्पत्ति में से मध्य वाले भाइयों के बराबर भाग देने का विधान है ।

(8) कात्यायन स्मृति में निम्न श्लोक है : **"कन्यकानां स्वदत्तानां; चतुर्थो भाग इष्यते । पुत्राणा च त्रयोभागाः, साम्यं स्वल्पधने स्मृतम् ॥"** (देखो दाय भाग 69, स्मृति चन्द्रिका 268) अर्थात् अविवाहिता कन्याओं का पैतृक सम्पत्ति में चौथा भाग रहता है शेष पुत्रों का 3/4 । जब वह धन थोड़ा हो तो कन्याओं का भी पुत्रों के समान धन पर अधिकार रहता है ।

(9) बृहस्पति स्मृति में इस विषय में लिखा है कि **'तदभावे तु जननी, तनयांशसमांशिनी । समांशा मातरस्तेषां, तुरीयांशा च कन्यका ॥'** (दाय भाग 69 स्मृतिसार 57 वीर मित्रोदय 2/117 धर्मकोष पृ. 1413) अर्थात पिता के मरने पर उसकी पत्नी का भाग अपने लड़कों के बराबर और कन्या का चौथा होना चाहिए ।

(10) विष्णुस्मृति 18/34, 35 में लिखा है : **'मातःपुत्र भागानुसारेण भागहारिण्यः अन्दाश्च दुहितरः॥"** (दाय भाग 68, सरस्वती विलास 357) अर्थात् माता का भाग पुत्रों के अनुसार होता है और अविवाहिता पुत्रियों का भी एक अन्य स्थान पर जिसे सरस्वती विलास पृ. 361 और धर्मकोष, व्यवहार कांड, उत्तरार्द्ध पृ. 1416 में उद्धत किया गया है। विष्णु ने कहा है कि **'अनूढानामप्रतिष्ठितानामेवांशो दातव्यः।'** अर्थात जो पुत्रियां अविवाहिता हों अथवा निर्धना व विधवा हों उन्हें पैतृक सम्पत्ति में से हिस्सा देना चाहिए।

(11) वृद्धहारीत स्मृति 7/256 में लिखा है : **भगिन्यश्च तुरीयांशं, पैतृकादाहदेद् धनम् । न स्त्रीधनं तु दायाद्वा विभजेरयुनापदि ॥** अर्थात् पैतृक धन से बहिनों को अपना चौथा भाग दे । सम्बन्धी बिना विशेष आपत्ति के स्त्री धन का बंटवार न करें ।

(12) देवल स्मृति में निम्न वचन पाया जाता था जिसे दाय भाग 175, स्मृति चन्द्रिका, 268, स्मृतिसार 59 आदि में उद्धत किया गया है :

कन्याभ्यश्च पितृद्रव्यश्च देयं वैवाहिकं वसु ॥ इसका अर्थ स्मृतिचन्द्रिकाकार ने यह किया है कि विवाहप्रयोजकं धनं कन्याभ्यः पितृद्रव्याद् देयम् ॥ अर्थात् कन्याओं को विवाह के लिए धन पैतृक सम्पत्ति में से देना चाहिए । किंतु व्यवहार प्रकाशकार ने इस अर्थ का खण्डन करते हुए लिखा है कि 'स्मृतिचन्द्रिकाकारस्तु कन्याभ्यश्चेति देववचनपनुसारेण संस्कार मात्रोपयोगि द्रव्यदानमेव मन्यते अत्र वदामः कन्याभ्यः पितृ द्रव्यदेयमिति पृथग् विधिः। तच्च मन्वाद्यनुरोधाच्चतुर्थांशरुपमेव । वैवाहिकवसुः च देयं इत्यपि पृथग् विधिः 'विभज्यमाने दायाद्ये कन्यालङ्कार वैवाहिकं च स्त्रीधनं लभेत्' इति शङ्खवचनसमानार्थतयां । व्याख्यातं चेदं शङ्खवचनं विद्यारण्यश्री चरणैः पराशर स्मृति टीकायाम्–पैतृकद्रव्यविभाग काले स्वघृतमलङ्का रादिकमपि कन्याप्राप्नोतीत्याह शङ्ख इति । यदि तु वैवाहिकं विवाहोपयोगि पितृव्यं कन्याभ्यों देयमित्यर्थः स्याद् वसुपदं पुनरुक्तं स्यादिति पृथग् विधिद्वयमेवात्र युक्तम् । तस्मादस्मदुक्तमेव व्याख्यानमादर्तुमहं नतु विवाहोपयुक्त द्रव्य परतेत्यवसेयम् ॥

(व्यवहार प्रकाश 456/457, धर्मकोष पृ. 1422) अर्थात् स्मृति चन्द्रिकाकार ने इस वचन का यह जो अर्थ किया है कि कन्याओं को केवल विवाहोपयोगी द्रव्य पिता की सम्पत्ति में से देना चाहिए यह ठीक नहीं है । यहां दो विधान हैं। एक तो यह कि कन्याओं को पैतृक धन देना चाहिए जो मनुस्मृति आदि के अनुसार चौथा हिस्सा है । दूसरी विधि यह है कि कन्याओं को विवाहोपयोगी द्रव्य देने चाहिए जैसे कि शङ्ख स्मृति में भी बताया गया है अन्यथा वसुपद व्यर्थ और पुनरुक्त होता। इसलिए हमारा अर्थ ही मानने योग्य है कि कन्याओं को पिता की सम्पत्ति में से हिस्सा (जो पुत्र का चौथा भाग हो) देना चाहिए और विवाहोपयोगी द्रव्य देने चाहिए।

(13) पैठानसि स्मृति में कहा कि **'कन्या वैवाहिकं स्त्रीधनं च लभते ।'** (व्यवहारनिण र्य तथा व्यवहारार्थ समुच्चय 129 से धर्मकोष पृ. 1422 में उद्धृत)

अर्थात् कन्या विवाहोपयोगी द्रव्य और धन के अतिरिक्त माता के स्त्रीधन को प्राप्त करे ।

(14) स्मृत्यन्तर से निम्न वचन स्मृतिचन्द्रिका 268 और व्यवहारार्थ समुच्चय 129 में उद्धृत किया गया है :–

भ्रातृभ्योंऽशं, चतुर्थांशं तत्र कन्या हरेद्धनम् ॥ अर्थात् कन्या प्रत्येक भाई के हिस्से के चौथे भाग को पैतृक सम्पत्ति में से प्राप्त करे ।

(15) कौटलीय अर्थशास्त्र 3/5 में कहा है कि,

रिक्थं पुत्रवतः पुत्रा दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेतु जाताः ॥

अर्थात् सन्तान वाले पिता के धन को उत्तम विवाहविधि से उत्पन्न पुत्र और पुत्रियां प्राप्त करें।

(16) शुक्राचार्य ने अपनी स्मृति में जिसे शुक्रनीति के नाम से कहा जाता है बताया है कि **समानभागा वै कार्याः, पुत्राः स्वस्य च वै स्त्रियः । स्वाभागार्धहरा कन्या, दौहित्रस्तु तदर्थभाक् ॥**

(शुक्रनीति 4, 5, 299)

अर्थात् पिता की सम्पत्ति में से पुत्रों और स्त्रियों को समान 2 भाग मिलना चाहिए । कन्याओं को पुत्रों के भाग का आधा और घेषते को उसका भी आधा । इसी प्रकार अन्य भी बहुत से वचन स्मृतियों तथा अन्य ग्रन्थों में कन्याओं के दाय भाग में अधिकार के पाए जाते हैं किन्तु उनमें कन्या का भाग प्रायः पुत्र को चौथा हिस्सा माना गया है । इन वचनों से यह तो स्पष्ट है कि वह कन्याओं को पैतृक सम्पत्ति में से भाग देने की प्रथा धर्मविरुद्ध या मुसलमानी नहीं है । इस विषय पर अन्य दृष्टियों से विचार मैं अगले लेख में करूंगा ।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार-10)

पुत्रियों के दायभागाधिकार पर विमर्श

(पूर्वार्ध)

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

पुत्रियों के पैतृक धन में दायभागाधिकार के सम्बन्ध में 16 प्रमाणों द्वारा विवेचन पूर्व लेखों में किया जा चुका है । अन्य भी अनेक प्रमाण इस विषय में उपलब्ध होते हैं किन्तु विस्तार भय से उन सबका उल्लेख करना यहां सम्भव नहीं है । शङ्ख लिखित स्मृति का निम्न वचन इस विषय में अवश्य उल्लेखनीय है जिसका कुछ निर्देश एक उद्धरण में किया जा चुका है:–

(17) **"विभज्यमाने दायाद्ये कन्पालङ्कारं वैवाहिकं, स्त्रीधनं च कन्या लभेत ।"**

इस का अर्थ यह है कि जब दायभागादि का विभाग किया जाय तो कन्या भूषण, विवाहोपयोगी द्रव्य तथा स्त्रीधन को प्राप्त करे । स्मृतिचन्द्रिका 269/270 में इस वाक्य की व्याख्या में लिखा है, **"मातृनिर्विभाज्यमाने कन्या स्वघृतमलङ्कुरं, वैवाहिकं तुरीयांशादिधनं स्त्रीधनं च, पित्रादिर्दत्तं लभेतेति ।"** यहां पुत्र के चतुर्थ भाग लेने का भी स्मृतिचन्द्रिकाकार ने उल्लेख कर दिया है ।

पिता की सम्पत्ति में चतुर्थ भाग लेने के अतिरिक्त मातृधन पर भी पुत्रियों के अधिकार का बहुत सी स्मृतियों तथा महाभारतादि में प्रतिपादन है । उदाहरणार्थ विष्णुस्मृति से निम्न वचन श्री प्रतापरुद्रदेव रचित सरस्वती विलास में उद्धत किया गया है **यौतुकं मातुः कुमारी दाय एव ।** (सरस्वती विलास पृ. 382)।

अर्थात् माता के द्रव्य पर (**यौतुकं अन्योन्यान्वितमोवधूर्वरयोर्देयं यत् तद्ध नम्**) कुमारियों का अधिकार होता है ।

(18) मनुस्मृति 9/192 में मातृधन विभाग के विषय में कहा है:

"जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः । भजेरन् मातृकम् रिक्थम् भगिन्यश्च सनाभयः ॥"

अर्थात् माता के मरने पर उसके धन को भाई और बहिनें बांट लें।

(19) बृहस्पति स्मृति में इस विषय में लिखा है–

"स्त्रीधनं तदपत्त्यानां, दुहिता च तदंशिनी ।
अप्रत्ता चेत्समूढा, तु, लभते मानमात्रकम् ॥"
"या तस्य भगिनी सातु, ततोंऽशं लब्धुमर्हति ।
अनपत्यस्य धर्माऽयम् अभार्यपितृकस्य च ॥" 26/108
"सा च दत्ता स्वदत्ता वा, सोदरे तु मृते सति ।
तस्यांशं तु, हरेत्सैव, द्वयोर्व्यक्तं हि कारणम् ॥" 26/109
"सोदर्या विभजेरस्ते, समेत्य सहिताः समम् ।
भ्रातरो ये च संसृष्टाः, भगिन्यश्च सनाभयः ॥" 26/114

इन श्लोकों में कहा गया है कि स्त्रीधन उस मृत स्त्री के पुत्रों का होता है और पुत्री का भी उसमें भाग होता है यदि वह अविवाहित हो । विवाहिता उस में से मान व प्रतिष्ठार्थ द्रव्य प्राप्त कर सकती है । यदि किसी का भाई मर जाए तो उसकी बहिन को भी उसके धन में से भाग मिलना चाहिए । चाहे वह पुत्रिकारूप में दी हुई हो या न हो, भाई के मरने पर उस का भाग उस बहिन को मिलना चाहिए क्योंकि दोनों के जन्म का मूल एक ही है । संसृष्ट व मिली हुई पैतृक सम्पत्ति को भाई-बहिन मिल कर बांट लें।

याज्ञवल्क्य स्मृति 2/117 व्यवहाराध्याय में लिखा है:– **"मातृर्दुहितरः शेषम्, ऋण ताभ्य ऋतेऽन्वयः"। इस की मिताक्षरा व्याख्या में विज्ञानेश्वर ने लिखा है—मातृकृत्तम् ऋणं पुत्रैरेवापकरणीयं न दुद्वितृभिः ऋणावरिष्टं तु दुहितरो गृहणीयुरिति । युक्तं चैतत् पुमान् पु सोधिके वीर्ये, स्त्रीभवत्यधिके स्त्रियाः इति स्त्रयवयवानां दुहितृषु वाहुल्यात स्त्रीधनं दुहितृगामि पितृधनं पुत्रगामि पित्रवयवानां पुत्रेषु बाहुल्यादिति । तत्रच गौतमेन विशेषो दर्शितः ।**

"स्त्रीधन दुहितृणाम् अप्रतिष्ठितानां अप्रतिष्ठानां च" गौतम धर्मसूत्र 28/25 ।।

अर्थात् माता पर कोई ऋण हो तो उसको चुकाना पुत्रों का कर्त्तव्य है पुत्रियों का नहीं । ऋण को चुका कर जो धन बचे उसको पुत्रियां ले ले । मनु के वचनानुसार लड़कियों मे माता के अवयव का अधिक भाग होने के कारण स्त्रीधन पर लड़कियों का और पिता के धन पर पुत्रों का अधिक अधिकार होता है । इस विषय में गौतम ने इस प्रकार विशेष दर्शाया है कि 'स्त्रीधन अविवाहिता और अप्रतिष्ठिता अथवा निर्धना लड़कियों का होता है ।'

(21) जहां तक अभ्रातृका का संबंध है, महाभारत अनुशासन पर्व 88/22 में कहा है **'अभ्रातृका समग्रार्हा, चार्धार्हेत्वपरे विदुः॥**

अर्थात् जिसके भाई न हो ऐसी पुत्री का पिता की सारी सम्पत्ति पर अधिकार होता है ऐसा अनेक आचार्यों का मत है । किसी किसी का मत यह है कि उसका आधी सम्पत्ति पर अधिकार है ।

(22) नारद स्मृति 16/50 में ऐसी अभ्रातृका के विषय में कहा है ।

'पुत्राभावे तु दुहिता, तुल्यसन्तानकारणात् ।

पुत्रश्च हुहिता चोभौ, पितुः सन्तानकारकौ ॥

(नारदीय मनुसंहिता 14/47)

अर्थात् पुत्र के अभाव में पुत्री को पैतृक सम्पत्ति मे पूरा अधिकार होता है कि वह भी पिता की पुत्र के समान ही सन्तान है ।

(23) महाभारत अनुशासनपर्व 45/12 में लिखा है, **'मातुश्च यौतुके यत्स्यात् कुमारीभाग एव सः ॥'**

अर्थात् माता के धन पर कुमारी का अधिकार होता है ।।

(24) बृहस्पति स्मृति 26/132 में कहा है– **'सद्दशी सद्दशेनोढा, शूश्रषणे रता । कृताऽकृता वा पुत्रस्य, पितुर्धनहरी तु सा ॥'**

अर्थात् जो पुत्री पिता के समान गुणकर्म स्वभाव वाली अपने समान योग्य पति से ब्याही गई हो, साध्वी पतिव्रता हो वह पिता के दाय भाग में अधिकारिणी होती है चाहे उसे पुत्र के रूप में माना गया हो या नहीं । इन वचनों पर निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने पर हम इन परिणामों पर पहुंचते है–(1) जो कन्याएं आजीवन ब्रह्मचर्य का गार्गी सुलभा आदि की तरह अनुष्ठान करके सामाजिक व राष्ट्रीय सेवा मे अपने को समर्पित कर दे उनका पिता की सम्पत्ति में पुत्रों के समान अधिकार होता है और उन्हें अपने निर्वाहार्थ पुत्र के समान भाग मिलना चाहिए । यदि यह अविवाहित रहना किसी शारीरिक दोषादि के कारण हो तो भी पिता की सम्पत्ति से ऐसी पुत्रियों को भाग मिलना चाहिए ।

(2) पिता की एकमात्र सन्तान पुत्री का पिता की सम्पत्ति पर अपनी माता के होते हुए उसके बराबर अन्यथा पूरा अधिकार है ।

(3) अविवाहिता कन्याओं को पिता की सम्पत्ति में भाइयों के भाग का चौथाई अंश मिलना चाहिए ऐसा मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, देवल, बृहस्पति, कात्यायन, विष्णु वृद्धहारीत आदि प्रायः सभी स्मृतिकारों ने माना है । शुक्राचार्य कन्याओं को पुत्रों का आधा भाग पैतृक सम्पत्ति मे देने के पक्षपाती हैं।

(4) विवाहिता पुत्रियों की भी पिता की सम्पत्ति में अधिकार हो इसका समर्थन करने वाले केवल तीन वचन मेरी दृष्टि में आये हैं । इनमें भी सब विवाहिता पुत्रियों को नहीं केवल अप्रतिष्ठिता अर्थात् निर्धना विवाहिता पुत्रियों को पिता की सम्पत्ति में से पुत्रों का चौथा भाग देने के विधान है । ये वचन विष्णुस्मृति, गौतमधर्मसूत्र और बृहस्पति स्मृति के हैं जिनको मैंने इससे पूर्व लेख में उद्धृत किया है । विष्णु का वचन जो पिछले लेख में छपा है इस प्रकार है:– **'अनूढानां अप्रतिष्ठितां एवांशो दातव्यः'** अर्थात अविवाहित और निर्धना पुत्रियों को ही पैतृक सम्पत्ति में से भाग मिलना चाहिए । सुप्रसिद्ध सनातनधर्माभिनामी दाक्षिणात्य विद्वान महामहोपाध्याय पं. अनन्तकृष्ण शास्त्री ने हिंदू ला कमेटी के सामने साक्षी देते हुए कहा था कि याज्ञवल्क्यस्मृति की मेरी व्याख्या के अनुसार एक पुत्री, चाहे वह विवाहिता हो अथवा अविवाहिता, पैतृक सम्पत्ति में से चौथे भाग की, जो विवाह विषयक खर्च के अतिरिक्त हो, अधिकारिणी है । (देखो हिंदू ला कमेटी रिपोर्ट 1947 पृ. 32).

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मेरा विचार यह है कि अविवाहित कन्याओं को पुत्र के भाग का एक चौथाई पैतृक सम्पत्ति में से देना सर्वथा शास्त्रसम्मत और उचित है । उनके अतिरिक्त निर्धना विवाहिता पुत्रियों को भी पैतृक सम्पत्ति में से भाग लेने का शास्त्रानुसार अधिकार है, यद्यपि इसके निश्चय करने में व्यावहारिक कठिनाइयां अवश्य हैं ।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार–11)

पुत्रियों के दायभागाधिकार पर विमर्श

(उत्तरार्ध)

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल में वसीयतहीन मृत पिता की लड़कियों को लड़कों के बराबर देने का जो प्रस्ताव है उससे मैं सहमत नहीं हूं क्योंकि यदि लड़कियों को पिता की सम्पत्ति में से पुत्रों के समान भाग मिले, पति की सम्पत्ति में भी विवाहिता पत्नी का अधिकार हो, माता के स्त्रीधन में से अधिक भाग उसका हो तो वह न्याय संगत बात प्रतीत नहीं होती । सब कमेटी ने लड़कियों को बिना वसीयत मृत पिता की सम्पत्ति में पुत्रों से आधा भाग देने का प्रस्ताव किया था किन्तु प्रवर समिति (सेलेक्ट कमेटी) के अनेक सदस्यों से प्रतीत होता है कि विरोध की प्रतिक्रिया के रूप में उसे लड़कों के बराबर देने का विचार प्रकट कर दिया जिसे हम बुद्धिमत्तापूर्ण व न्यायसम्मत नहीं कह सकते। वस्तुत: ऐसा करके उन्होंने हिन्दू कोड बिल के विरुद्ध आंदोलन को अनजाने प्रबल बनाने में सहायता दी। यदि वे इस लेखमाला में उद्धृत शास्त्रीय वचनों को दृष्टि में रखते हुए और मद्रास हाईकोर्ट मे भू. पू. सुयोग्य जज सर वेपा रामेशम् जैसे सुधार प्रेमी महानुभावों के वचनानुसार लड़कियों के पिता की सम्पत्ति में से लड़कों का चौथा भाग देने का प्रस्ताव भी रखते तो इस बिल का इतना विरोध न होता यह मुझे निश्चय है। अत: मेरा अब भी इस बिल के प्रस्तावक महोदय से सानुरोध निवेदन है कि वे लड़कियों को वसीयत हीन मृत पिता की सम्पत्ति में लड़कों के चौथे भाग देने का संशोधन स्वीकार कर लें। कोई निष्पक्ष व्यक्ति शास्त्रीय दृष्टि से भी इसका विरोध करने का साहस न करेगा और व्यावहारिका दृष्टि से भी विचार करने वालों को वह अधिक न्याय संगत प्रतीत होगा।

इस प्रस्ताव के विरोध में यह कहा जाता है कि लड़कियों का पैतृक सम्पत्ति में भाग होने से भाई बहिनों के झगड़े बढ़ जायेंगे और उनमें परस्पर प्रेम नही रहेगा । यह युक्ति कुछ भी प्रबल नहीं । इस युक्ति के अनुसार तो भाइयों में भी परस्पर विभाजन नहीं होना चाहिए। संसार की प्राय: सभी जातियों में लड़कियों को पिता की सम्पत्ति में भाग मिलता है उससे उनके अन्दर प्रेम नहीं रहता अथवा झगड़े बढ़ जाते हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। गोआ में भी एक ही सिविल कोड हिन्दुओं, इसाइयों, मुसलमानों सब पर लागू है जिसके अनुसार लड़कियों को लड़कों की तरह पैतृक सम्पत्ति में भाग मिलता है किन्तु जांच करने पर पता लगा है कि भाई बहिनों के झगड़ों के उदाहरण वहां नहीं के बराबर हैं । भाई बहिनों का प्रेम इसलिए न रहे कि बहिन को भी मृत पिता की सम्पत्ति में कुछ भाग (जो हमारे शास्त्रसम्मत और न्याय संगत प्रस्तावानुसार भाई के भाग का चौथाई) मिलता है तो ऐसे प्रेम को तो केवल स्वार्थमूलक ही कहना चाहिए। कलकत्ता हाईकोर्ट के एडवोकेट श्री. ए. सी. गुप्त और मद्रास के सर पी. एस. शिवस्वामी ऐय्यर ने हिन्दू ला कमेटी की सामने साक्षी देते हुए इस युक्ति के खण्डन में ठीक ही कहा था कि भाई

का वह कैसा प्रेम होगा जो अपने स्वार्थ या भाग की थोड़ी सी हानि से टूट जायेगा। हम इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते कि जब बहिन को कोई भाग न दिया जाय तब प्रेम अधिक होगा अन्यथा नहीं।

इस पर भी यदि किन्हीं महानुभावों को यह आशंका हो तो उन्हें अपनी वसीयत में यह लिखा देने का अधिकार है कि हमारी पुत्रियों को सम्पत्ति में कोई भाग न दिया जाए। वह प्रस्ताव केवल वसीयत किए बिना मृत व्यक्ति की सम्पत्ति के विषय में है कि उसकी लड़की को भी भाग मिले, अन्यों के विषय में नहीं। इस बात को प्राय: लोग नहीं जानते अथवा भूल जाते हैं। अपनी वसीयत में कुछ भी निर्देश लिखने का प्रत्येक को अधिकार है, जिसका लड़कियों को पैतृक सम्पत्ति में भाग देने के विरोधी अच्छी प्रकार उपयोग कर सकते हैं ।

यह आक्षेप किया जाता है और उसमें कुछ तथ्य है कि यदि लड़कियों को पैतृक सम्पत्ति विशेषत: चल सम्पत्ति में अधिकार दिया जायेगा तो उससे बड़ी गड़बड़ हो जाएगी। विवाह के पश्चात् लड़कियां सम्पत्ति को कहां और कैसे ले जाएंगी। इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि भाई बहिनों की सम्पत्ति को खरीद लें। सबसे प्रथम अधिकार उन्हें ही दिया जाए। यही विचार श्रीयुत कन्हैया लाल जी मुंशी आदि कई सुप्रसिद्ध महानुभावों ने प्रकट किया था। एक दूसरा संशोधन इस विषय में यह प्रस्तुत किया जाता है जो हमें उचित ही प्रतीत होता है कि लड़कियों को संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में रहने और उसके उपयोग का अधिकार हो किन्तु उसे अन्यों को बेचने अथवा उसके किसी भाग को किराये पर देने का अधिकार न होना चाहिए।

इस संशोधन को यदि स्वीकार कर लिया जाय तो उपर्युक्त आक्षेप का बहुत कुछ समाधान हो जाता है ।

क्योंकि लड़कियां मृत पितरों के लिए पिण्ड नहीं देतीं अत: उनका पिता की सम्पत्ति में कोई भाग न होना चाहिए यह युक्ति जो मदुरा के राव साहब नरेश ऐय्यर, महामहोपाध्याय चिन्न स्वामी शास्त्री तथा अन्य बहुत से पौराणिक पंडितों ने प्रस्तुत की इतनी निस्कार है कि इस विषय में कुछ भी लिखना अनावश्यक है । विवाह पर जो आडम्बरपूर्ण व्यर्थ व्यय आज कल किए जाते हैं, जिनसे सिवाय अपनी प्रतिष्ठा दिखाने के कोई लाभ नहीं होता प्रत्युत हजारों परिवार सदा के लिए ऋण से दब जाते हैं, उनको कम करके लड़कियों की शिक्षा तथा आपत्ति के समय सहायतार्थ पैतृक सम्पत्ति में से भाग दिलाया जाये तो वह सर्वथा उचित ही होगा । दहेज इत्यादि की हानिकारक और आडम्बरपूर्ण प्रथाएं भी इससे बहुत न्यून हो जायेंगी और लड़कियों को आपत्ति के समय वास्तविक लाभ हो सकेगा। आशा है इन पंक्तियों पर विचारशील लोग गम्भीरता से विचार करेंगे।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार–12)

संयुक्त परिवार प्रथा

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल में जिन धाराओं के विरुद्ध घोर असन्तोष प्रकट किया जा रहा है उन में से निम्न धाराएं भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

धारा 86 परिवार में जन्म सम्पत्ति पर अधिकार स्थापित नहीं करता । इस कोड के आरम्भ होने पर तथा उसके बाद, पूर्वज के जीवन काल के दरम्यान उसकी सम्पत्ति में हित रखने का दावा करने का अधिकार जो कि केवल इस तथ्य पर निर्धारित है कि दावेदार का जन्म उक्त पूर्वज के परिवार में हुआ था किसी भी अदालत में स्वीकृत नहीं होगा।

(87) संयुक्त आसामी का स्थान सम्मिलित आसामी के रूप में बदल जाएगा:–

प्रस्तुत कोड के आरम्भ पर तथा उसके बाद कोई भी अदालत, संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में हित रखने के किसी ऐसे अधिकार को मान्य नहीं करेगी जो कि उत्तराधिकार के नियम पर अवलम्बित हैं और समस्त व्यक्ति जिनके जिस दिन यह कोड कार्यान्वित हो जाएगा उस दिन कोई संयुक्त परिवार की सम्पत्ति है वह उक्त सम्पत्ति बतौर सम्मिलित आसामियों के (टेनेन्ट्स इन कामन) Tenants in common अपने पास रखते हैं ऐसा विचारा जायेगा। मानो कि कोड के आरम्भ की तिथि पर ऐसी सम्पत्ति के विषय में संयुक्त परिवार के समस्त सदस्यों के बीच बंटवारा हो गया था और उनमें से प्रत्येक व्यक्ति अपना भाग एकपरिपूर्ण स्वामी के रूप में अपने पास अलग रखते हैं । इत्यादि :–

(88) हिन्दू पत्र के धार्मिक कर्तव्य का (पायस आब्लिगेशन) pious obligation का नियम खंडित किया जाता है (1) इस कोड के आरम्भ मे पश्चात् कोई भी अदालत सिवाय उसके जैसा कि उपधारा 2 में विनिहित किया गया है, किसी पुत्र, पौत्र, पौत्र के विरुद्ध, उसके पिता, पितामह, और प्रपितामह द्वारा लिये गये ऋण की वसूली के लिये और ऐसे किसी ऋण की अदायगी के सम्बन्ध में किसी सम्पत्ति को अधिकार में लेने के लिए इस आधार पर कि ऐसे किसी ऋण को चुका देगा उक्त पुत्र, पौत्र अथवा प्रपौत्र का धार्मिक कर्त्तव्य है, कानूनी कार्यवाही करने के अधिकार को स्वीकृत नहीं करेगी।

(2) इस कोड के प्रयोग में आने से पहिले यदि कोई ऋण लिया गया है तो उस हालत में उपधारा 1 में उल्लिखित कोई भी बात निम्नांकितों पर प्रभाव नहीं डालेगी।

(अ) किसी भी लेनदार का पुत्र, पौत्र, और प्रपौत्र जैसे कि सूरत हो, के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही दायर करने का अधिकार या ऐसे किसी देन की वसूली के सम्बन्ध में किया गया किसी सम्पत्ति का स्वत्वार्पण या इन्तकाल (Alienation) और ऐसा कोई अधिकार या स्वत्वार्पण धार्मिक कर्त्तव्य के नियम के अधीन उसी प्रकार और उसी सीमा तक प्रयोग में लाया जायेगा जैसा कि यह कोड पास न होने की अवस्था में किया जाता।

89–संयुक्त परिवार के सदस्यों की कोड के पहिले की ऋण विषयक जिम्मेदारयों में परिवर्तन नहीं होगा–जहां इस कोड के आरम्भ से पहिले संयुक्त परिवार के नियामक एवं कर्ता द्वारा परिवार के प्रयोजनार्थ कोई कर्जा लिया गया हो तो उस अवस्था में इस कोड में उल्लिखित कोई भी बात संयुक्त परिवार की किसी भी सदस्य की उक्त ऋण चुका देने की जिम्मेदारी पर लागू नहीं होती और ऐसी कोई जिम्मेदारी ऐसे समस्त या किन्हीं भी व्यक्तियों पर जो उसके लिए उत्तरदायी हैं इसी प्रकार और इसी सीमा तक आएद की जायेगी जैसी वह कोड पास न होने की सूरत में की जाती । इत्यादि।

सबसे बड़ी आपत्ति जो इस धाराओं के सम्बन्ध में उठाई जाती है इनके द्वारा संयुक्त परिवार प्रथा का, जो कि अनादि काल से चली आ रही एक धार्मिक प्रथा है, अंत हो जाएगा। हिन्दू कोड बिल पर जो वाद-विवाद पिछले दिनों भारतीय राष्ट्रसंसद में होता रहा है उसको 4 दिन सुनने का अवसर मुझको भी प्राप्त हुआ। मुझे यह देखकर सचमुच आश्चर्य हुआ कि इसके सबसे कट्टर विरोधी एक और प्रकार से कोड विरोधी दल के प्रमुख नेता मौलाना नसीरुद्दीन अहमद हैं । जिन्होंने पग-पग पर इसकी प्रगति में रोड़े अटकाने का सिर तोड़ यत्न किया और श्रोताओं के नितान्त अरुचि प्रकट करने पर भी 7 घण्टों का भाषण कोड के विरुद्ध दिया। एक कट्टर मुस्लिमलीगी सज्जन के साथ पं. लक्ष्मीकांत मैत्रेय जैसे कट्टर पंथी सनातन धर्माभिमानी का यह गठबंधन सदस्यों और दर्शकों को अवश्य आश्चर्यचकित करने वाला प्रतीत होता है। यदि सचमुच मौलाना नसीरुद्दीन अहमद का हिंदूधर्म, हिंदू सभ्यता तथा प्रथाओं पर इतना विश्वास हो गया है कि वे इनके गुण गाते नहीं थकते तो क्यों नहीं वे इसको ग्रहण कर लेते? 2 अप्रैल के भाषण में मौ. नसीरुद्दीन अहमद ने तलाक के विरुद्ध और संयुक्त परिवार प्रथा के समर्थन में बहुत कुछ कहा। ऐसा ही पं. लक्ष्मीकांत और अजमेर के पं. मुकुट बिहारीलाल भार्गव ने भी कहा। संयुक्त परिवार प्रथा का प्रायः लोप ही होता जा रहा है। वर्तमान नियमों के अनुसार परिवार का कोई भी सदस्य साधारण पत्रादि द्वारा प्रार्थना करके भी उसके पृथक् हो सकता है । भारतीय न्यायालयों और प्रिवीकौंसिल के निर्णय संयुक्त परिवार के सदस्यों के इस अधिकार का स्वीकृत करने के पक्ष में हैं। पुराने और नये विचार वाले लोगों के रहन-सहन आचार-विचारादि में भेद इतना बढ़ गया है तथा अन्य भी अनेक ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं जिनमें संयुक्त परिवार प्रथा स्वयमेव नष्टप्राय हो चुकी है और प्रतिदिन होती जा रही है किन्तु मैं उनके नियम में लिखने की कोई आवश्यकता नहीं समझता। मैं तो इस बात पर शास्त्रों की दृष्टि से कुछ प्रकाश डालना चाहता हूं जिनके नाम की दुहाई हमारे पौराणिक भाई और मौ. नसीरुद्दीन अहमद जैसे उनके वकील देते हैं। पाठक महानुभाव स्मृतियों के निम्न वचनों पर गम्भीरता से निष्पक्ष होकर विचार करें।

(1) मनुस्मृति 9/111 में लिखा है:–

एवं सह वसेयुर्वा, पृथग् वा धर्म काम्यया।

पृथग् विवर्धते धर्मः तस्माद धर्म्मा पृथक क्रिया ॥

अर्थात् इस प्रकार भाई साथ रहें अथवा अलग अलग रहें यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। पर अलग-अलग रहने से धर्म की वृद्धि होती है इसलिए अलग-अलग रहकर कर्म करना धर्म-सम्मत है। इसकी व्याख्या में कुल्लूक भट्ट ने लिखा है कि **"एवम् अविभक्ता भ्रातरः सह वसेयुः यदि वा धर्मकामनया कृतविभागाः पृथग् वसेयुः यस्मात् पृथगवस्थाने सति पृथग-पृथग महायज्ञाद्यनुष्ठानधर्मस्तेषां विवर्धते तस्माद विभागक्रिया धर्मार्था।"** अर्थात् इस प्रकार भाई अविभक्त रह कर साथ रहें अथवा

धर्म की कामना से विभाग (बंटवारा) करके अलग-अलग रहें, क्योंकि अलग-अलग रहने पर पंचमहायज्ञों का अनुष्ठान अलग-अलग होने से धर्म बढ़ता है। इसलिए विभाग किया अर्थात् बंटवारा करके अलग-अलग क्रिया करना धर्म के अनुकूल है ।

मेधातिथि ने भी इस श्लोक की ऐसी ही व्याख्या करके यहां तक लिखा है कि **"यस्तु जीवत्पेध पितरि कृतविवाहस्तदैव परिगृहीताग्निस्तस्यांधिकृततत्वान्नैवा—विभागः नहि विभागाधि भागयोर्धर्माधमंत्वं स्वरुपेणास्तीतयुक्तम्॥"**

(मनुस्मृति, मेधातिथिभाष्य, 2य भाग, कलकत्ता संस्करण पृ. 273)

अर्थात् जो पिता के जीवित होते हुए विवाह कर लेता है और तब गृह्याग्नि का ग्रहण करता है उसका संयुक्त परिवार से विभाग (पृथक् हो जाना) अनिवार्य या अत्यावश्यक है। परिवार के सदस्यों के विभाग होने या न होने में कोई धर्म या अधर्म नहीं है, यह हम बता चुके हैं।

(2) बृहस्पति स्मृति में इस विषय में कहा गया है :–

एकपाकेन वसतां, पितृदेवार्चनादियम् । एकं भवोद्विभक्तानां, तदेवस्याद् गृहे गृहे॥

(बृहस्पति स्मृति 26/5 पृ. 96 बड़ौदा संस्करण)

अर्थात भाई इत्यादि यदि इकट्ठे रहें और एक स्थान पर भोजन खाएं तो पितृयज्ञ, देवयज्ञादि एक ही हो सकता है किन्तु यदि वे विभक्त हो अलग-अलग रहें तो ये यज्ञ प्रत्येक घर में होते हैं इसलिए विभक्त होकर रहना ही अधिक अच्छा है।

(3) गौतम धर्म सूत्र 284 में भी इसी बात को लेके छोटे से सूत्र द्वारा प्रकट किया गया है जो निम्नलिखित है:–

'विभागे तु धर्मवृद्धिः–

अर्थात् संयुक्त परिवार की अपेक्षा उससे विभक्त हो जाने पर धर्म की वृद्धि होती है।

इसी प्रकार के वचन अन्य भी ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं कितु इतने ही उन लोगों के वचन को आयथार्थ सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। जो संयुक्त परिवार की प्रथा को प्राचीन आर्य हिन्दू धर्म और संस्कृति का अनिवार्य या अत्यावश्यक अंग मान कर उसके भंग को अधर्म्य समझते हैं। वास्तव में धर्म की दृष्टि से बात इससे ठीक विपरीत है । हां, यह तो आवश्यक धर्म है कि सबका परस्पर प्रेम और पूर्ण सहानुभूति हो, किसी प्रकार का विरोध भाव न हो। अथर्ववेद 3/30 में ऐसा ही आदेश है।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमिवः। अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सजातामिवाध्या ॥

अर्थात् मैं तुम्हारे अंदर हृदय और मन की एकता और अद्वेष भाव को स्थापित करता हूं।

तुम आपस में ऐसा प्रेम रखो जैसा गाय नवजात बछड़े के प्रति रखती है।

व्यावहारिक दृष्टि से संयुक्त परिवार प्रथा के पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ लिखा जा सकता है, किंतु मैं उस विषय में लिखना यहां आवश्यक नहीं समझता। वैयक्तिक शक्तियों का विकास, स्वावलम्बनादि गुणों की वृद्धि रहने में अधिक हो सकती है ऐसा लोगों का प्रायः अनुभव है। सम्बन्धियों तथा अन्यों के प्रति दया और सहानुभूति प्रदर्शित करना तो प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है ही। धार्मिक दृष्टि से इतना निर्देश ही पर्याप्त है।

●●

(हिन्दू कोड बिल पर कुछ विचार-13)

हिन्दू कोड बिल की आवश्यकता

पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति

गत लेख में मैंने संयुक्त परिवार प्रथा के सम्बन्ध में धार्मिक दृष्टि से कुछ प्रकाश डाला था। जन्मजात अधिकार की सम्पत्ति के विषय में विशेष लिखने की आवश्यकता मैंने नहीं समझी । हम वैदिकधर्मी तो जन्मसिद्ध अधिकार किसी विषय में भी नहीं मानते, **"अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते स भ्रातरो वावृधुः सौभगाय । युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुधा वृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥"** (ऋग्वेद 5/625)

इत्यादि मन्त्रों में मनुष्यमात्र की भ्रातृता तथा समानता का तात्त्विक दृष्टि से प्रतिपादन करते हुए जन्मसिद्ध अधिकार का निराकरण किया गया है । बोद्ध, जैन, सिक्ख आदि मतानुयायी भी समानता के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं जिससे जन्मसिद्धधिकार का समर्थन नहीं होता। महर्षि दयानन्द तो यहां तक बढ़ गए हैं कि उन्होंने केवल गुण-कर्म-स्वभाव पर आश्रित वर्णव्यवस्था के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट लिखा है कि :-

> "न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे इसलिए कुछ भी अव्यवस्था न होगी ।" मिताक्षरा और दायभाग के अन्तर के विस्तार में जाना इस लेख में संभव नहीं किन्तु इस विषय में पटना के एक विद्वान रिटायर्ड सबजज ने हिन्दू ला कमेटी के सम्मुख साक्षी देते हुए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और युक्तिसंगत बात अपने अनुभव के आधार पर कही जिसका उल्लेख मुझे यहां उचित प्रतीत होता है । उन्होंने कहा कि "मिताक्षरा की अपेक्षा दायभाग अधिक उपयुक्त है । मैं संयुक्त परिवार प्रथा, पुत्र के जन्मजन्य अधिकारादि को समाप्त करने के पक्ष में हूं । मैं देखता हूँ कि बिहार में धनी परिवारों के बालक आलसी होते हैं क्योंकि सम्पत्ति में जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त है जब कि बंगाल मे जहां दायभाग के अनुसार नियम प्रचलित है, बालक कर्मशील और साहसी होते हैं क्योंकि उन्हें धनी परिवार में जन्म लेने के ही कारण कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता ।"
>
> (देखो हिन्दू ला कमेटी पृ. 154)

पिता, पितामह के ऋण की नैतिक उत्तरदायिता से पुत्र, पौत्रादि को मुक्त करने की बात जो पूर्वोद्धृत धारा 88 में कही गई है युक्तियुक्त तथा न्यायसंगत प्रतीत होती है।

जहां तक सर्वसामान्य हिन्दू कोड बिल की आवश्यकता व उपयोगिता का प्रश्न है, मेरा विश्वास है कि किसी भी संगठन प्रेमी समाजहितैषि का इस विषय में मतभेद होना असम्भवप्राय है। अब अधिकतर स्थानीय व प्रांतीय रूढ़ियों व रीतिरिवाजों के विधान (कानून) का स्थान

ले रक्खा है । **'रूढिः शास्त्राद् बलीयसी:'** इस हानिकारिका और संगठन तथा एकता में बाधिका उक्ति ने कि रूढ़ि शास्त्र से भी अधिक प्रवल होती है, हिन्दु समाज को जीर्णशीर्ण बना दिया है । कानून का निश्चय करने में भी इसके कारण बड़ी कठिनाई होती है, और न्यायालयों के परस्पर विरुद्ध निर्णय के कारण धन और शक्ति का बड़ा अपव्यय होता है अत: एक सर्वसामान्य हिन्दू कोड का होना प्रत्येक दृष्टि से वांछनीय है । महर्षि दयानन्द ने स्वराज्य के महत्व को "कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और अन्याय के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।" इन शब्दों में दिखाते हुए लिखा "परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, शिक्षा, अलग-अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है । बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है ।"

(सत्यार्थप्रकरण 8 में सूत्र)

मुझे इसमें सन्देह प्रतीत नहीं होता है कि हिन्दू कोड अलग अलग व्यवहारादि जन्म विषमता को दूर करने में सहायक होगा अत: यह उपयोगी है । केवल हिन्दुओं के लिए ही नहीं, सभी भारतीयों के लिए एक सर्वसामान्य व्यवहार संहिता (कोड) बनाई जाय इस मांग में मुझे कोई बुराई प्रतीत नहीं होती पर उसमें अधिक समय लगेगा । उससे पूर्व हिंदुओं के संगठन को दृढ़ करने तथा सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए हिन्दू कोड की भी उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता । मौलाना नसीरुद्दीन अहमद जैसे व्यक्ति जो कट्टर मुस्लिम लीगी रहे हैं और जिनकी मनोवृत्ति मे अब विशेष परिवर्तन हो गया है, ऐसा मानने का हमें कोई प्रमाण नहीं मिलता, यदि इस दृष्टि से भी हिन्दू कोड का विरोध कर रहे हैं तो कोई आश्चर्य की बात न होगी अन्यथा उनका इससे कोई सम्बन्ध तो नहीं जिससे सात-सात घण्टे भाषण की उन्हें आवश्यकता प्रतीत हो ।

यह कहना कि वर्तमान संविधान सभा के सदस्यों को ऐसे बिल को बनने व स्वीकृत करने का अधिकार नहीं हमें युक्तिसंगत प्रतीत होती । यदि सभा विधान बनाने जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य को करने का अधिकार रखती है तो उसे हिन्दू कोड बिल जैसे उपयोगी बिल को बनाने व उसे पास करने के अधिकार से कैसे वंचित किया जा सकता है विशेषत: जब कि संविधान सभा एक सर्वाधिकार सम्पन्न स्वतन्त्र संस्था मानी जा चुकी है । हां, इतनी बात अवश्य न्यायसंगत और युक्तियुक्त है कि हिन्दू कोड बिल जैसे बिल पर सम्मति देने का अधिकार केवल हिन्दू सदस्यों को ही हो अन्यों को नही क्योंकी अहिंदुओं का इससे कोई सम्बन्ध नहीं । जैसा कि मैने एस लेखमाला में शास्त्रीय और व्यावहारिक दृष्टि से प्रस्तुत हिन्दू कोड बिल की भिन्न-भिन्न मुख्य धाराओं पर प्रकाश डालते हुए बताया है एक विवाह, अन्तर्जातीय विवाह समर्थन, स्त्रियों की दशा को उन्नत इत्यादि विषयक इसके प्राधान प्रशंसनीय है । विवाह की आयु, पुत्रियों के दायभाग में अधिकार तथा अन्य विषयों में संशोधनों की आवश्यकता है । वर-वधू के लिए न्यूनतम आयु 24 वर्ष और 16

होनी सर्वथा उचित है 22 और 15 तुरन्त कर ही देनी चाहिए यदि तत्काल 24 और 16 नियत करने में कोई विशेष कठिनाई हो । अति विशेष अवस्थाओं में सम्बन्ध-विच्छेद की अनुमति देना आवश्यक हो तो उसकी शर्तों को और अधिक कठोर बनाया जाए तथा 8, 10 वर्ष की ऐसी अवधि निश्चित की जाए जिसके भीतर नपुंसकता, पागलपन तथा कुष्ठ (कोढ़) इत्यादि के कारण भी सम्बन्ध विच्छेद की अनुमति न दी जाए । विषम विवाहों को दूर करने के लिए भी नियम बनाने आवश्यक हैं । गोद लेने के लिए पुरुष की आयु 25 वर्ष और स्त्री की आयु 21 वर्ष की अवश्य होनी चाहिये । पुत्रियों को दायभाग में वसीयतहीन मृत पिता की सम्पत्ति में पुत्रों के बराबर नहीं किन्तु चौथाई भाग मिलना चाहिये । हां पति की सम्पत्ति और माता के स्त्रीधन में से स्त्रियों को विशेष अधिकार मिलना चाहिए । पुत्रियों को पैतृक अचल सम्पत्ति के उपभोग का अधिकार होना चाहिए, भाई के अतिरिक्त अन्यों को बेचने तथा किराये पर देने का नहीं, इत्यादि संशोधन के लिए प्रयत्न करते हुए यदि हिन्दू कोड बिल का समान्यरुपेण समर्थन किया जाए तो यह समाज और देशहित की दृष्टि से मेरे विचार में सर्वथा उचित ही होगा । हिन्दू समाज की वर्तमान अवस्था शोचनीय है, उसका उद्धार अनेक आवश्यक सुधारों के बिना जिनमें जातिभेद को दूर करने का प्रमुख स्थान है संभव प्रतीत नहीं होता । आशा है विचारशील महानुभाव निष्पक्ष होकर इन विषयों पर गम्भीरता से विचार करेंगे ।

●●●